विजिगीषु भारत

– डॉ. महेश चन्द्र शर्मा

भारत की विजिगीषा सदैव ही बहुत शिथिल रही है। क्योंकि संस्कार एवं स्वभाववश भारत अद्वैत किंवा एकात्मवादी रहा है। विजिगीषा का अर्थ है "विजयाकांक्षा", विजय तत्त्व में किसी न किसी की पराजय भी अंतर्निहित है। जय एवं पराजय का समीकरण बिना द्वैत के संभव नहीं। अतः सांस्कृतिक भारत सैन्य विजय–पराजय की ग्रंथि से मुक्त रहा। भारत ने भारत के रूप में विश्व भर में संस्कृति का संचरण किया। आज भी भारत के पूर्व में तिब्बत से लेकर चीन–कोरिया तक जो देश हैं, वे भारत के प्रति न केवल सम्मान वरन् भक्ति का भाव रखते हैं, तिब्बत तो भारत को अपना गुरू मानता है। भारत के पश्चिम में जो अरब देश है, वहां भी भारत की बहुत प्रतिष्ठा है। मोहम्मद साहब ने हदीस में कहा है "हिंद के तरफ से मुझे ठंडी हवाएं आती है"। इसी पर इकबाल ने लिखा है–

मीर–अरब को आई, ठंडी हवा जहां से।
मेरा वतन वही है, मेरा वतन वही है।।

मिस्र में भारत सम्मानित देश माना जाता है। कहते हैं जब यूनान के सिकंदर ने भारत पर आक्रमण किया तो–गुरू अरस्तु ने उसे भारत का परिचय "दार्शनिकों का देश" यह कहकर करवाया।

भारत के उत्तर में यूरोप है। जहां से कोलम्बस भारत खोजने निकला, क्योंकि उसने सुना था कि "भारत सोने की चिड़िया" है। वहां दूध–दही की नदियां बहती हैं। सम्पन्न भारत को तलाशने कोलम्बस निकला था।

भारत ने विश्वभर में यह प्रतिष्ठा किसी को पराजित करके अर्जित नहीं की थी। यह उसकी सकारात्मक सांस्कृतिक विजय थी। लेकिन संसार तो भारत की तरह संस्कारों एवं संस्कृति का पुजारी नहीं था। दुनिया के देशों में तो सत्ता विस्तार एवं साम्राज्य की स्थापना ही उन्हें "महानता" के दर्शन करवाती थी। यह आक्रमणकारी प्रवृत्ति भारत के लिए बेगानी थी। भारत राजनैतिक आक्रमणों का शिकार हुआ। यूनानी, शक, हूण, कुषाण, अरब, तुर्क एवं मुगल आक्रमणों ने भारत की संस्कृति एवं सामाजिकता को रौंदने का प्रयत्न किया। इन आक्रमणों के खिलाफ भी भारत "विजिगीषु" नहीं वरन् अनमनेपन से रक्षात्मक था।

यह सभी आक्रमण पराभूत हुए, लेकिन इनको पराभूत करने का औजार भी सेना एवं शस्त्र नहीं थे। भारत की संस्कृति इतनी बलवान थी कि उसने आक्रमणकारियों के समक्ष झुकने से इनकार कर दिया। जब अरब जगत् से एक हाथ में तलवार और एक हाथ मे कुरान लेकर इस्लाम दुनिया भर को मुसलमान बनाने की तमन्ना लेकर तूफान की तरह निकला, तो इरान तक के देशों ने उसकी विजय को स्वीकार कर लिया तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक रूप से यह देश समाप्त हो गए। इसीलिए इकबाल ने लिखा है–

यूनान, मिस्र रोमां, सब मिट गए जहां से।
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी।।

भारत का सांस्कृतिक श्रेष्ठत्व ही भारत की अजेयता का रहस्य है। इस पृष्ठभूमि के कारण आक्रमणकारी राजसत्ताओं एवं उनके माध्यम से आरोपित होने वाली सभ्यताओं के खिलाफ भारत में जयिष्णु भाव उत्पन्न करना कठिन कार्य था। इस कार्य को करने वाले प्रथम महापुरूष थे आचार्य चाणक्य, चाणक्य ने भारत के विराट् को जगाया, चंद्रगुप्त जैसे शासक को गढ़ा तथा उसमें "विजिगीषु" प्रवृत्ति पैदा की। यह आसान कार्य नहीं था, लेकिन भारत मे विजिगीषु का बीजवपन हो गया। परिणामतः सम्राट् विक्रमादित्य, चोलवंश,

विजयनगर साम्राज्य एवं मध्यकाल में महाराणा प्रताप, हिंदवी स्वराज्य के संस्थापक छत्रपति शिवाजी एवं खालसा पंथ के नियामक गुरू गोविंद सिंह जैसे महापुरूषों ने विजिगीषु भारत का प्रतिनिधित्व किया। यह विजय की आकांक्षा इतनी प्रबल थी कि गुरू गोविंद सिंह ने कहा:

देहु शिवा वर मोर यही
शुभ करमन सौं कबहु न टरों।

न डरों अरि सौं अर जय करों
निश्चय कर अपनी विजय करों ।।

सांस्कृतिक रूप से सहिष्णु भारत विजयाकांक्षा से आपूरित हो गया, लेकिन यह भारत की मूल प्रवृत्ति नहीं बन सकी। जब अंग्रेज ने भारत को क्रमशः विजित करना प्रारम्भ किया, तो संपूर्ण भारत ने भारतीय सत्ता के नाते उसका प्रतिकार नहीं किया। हालांकि भारत ने एक रात भी अंग्रेज को चैन से नहीं सोने दिया, प्रतिकार की प्रक्रिया निरंतर चलती रही। 1857 में उसे भारत की शस्त्रक्रांति का सामना करना पड़ा तथा बाद में सशस्त्र क्रांतिकारियों के प्रहारों ने उसे तिलमिला दिया और अंततः "विजिगीषु" सुभाष चंद्र बोस ने "तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा" का नारा बुलंद किया। अंग्रेज पराजय की कगार पर था, लेकिन अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियां बदल गईं। अमेरिकन "एटम बम" ने द्वितीय महायुद्ध का अंत अंग्रेज के पक्ष में कर दिया, "जयहिंद का उद्घोष" शांत हो गया।

सांस्कृतिक भारत की अहिंसा एवं सत्याग्रह की धरा जयिष्णु नहीं थी, यह सहिष्णुता की धारा थी। अंग्रेजी कपट ने इस धारा को कुंद कर दिया। भारत पहली बार पराजित हुआ। आक्रमणकारी द्वारा आरोपित मजहबी संस्कृति के नाम पर स्थापित "द्वि–राष्ट्र" विजयी हुआ। भारत के एक राष्ट्रवाद के भंजित होने से "पाकिस्तान" का निर्माण हुआ, निश्चय ही "विजिगीषु–भारत" मर्माहत हुआ।

एक ओर विभाजन का दंश, दूसरी ओर विभाजनकारी प्रवृत्तियों का राजनैतिक तुष्टीकरण तथा अंग्रेजों द्वारा आरोपित पाश्चात्य सभ्यता आज भी भारत को पराजित करने के लिए आतुरतापूर्वक सक्रिय है। जयिष्णु भारत को इसका जवाब देना होगा। "विजिगीषु भारत" का अनंत उद्घोष है "भारत माता की जय।" यह लंबी कहानी है, क्या हमारी पीढ़ी इस कहानी का "पटाक्षेप" कर सकेगी?

(लेखक एकात्म मानव दर्शन अनुसंधान एवं विकास प्रतिष्ठान के अध्यक्ष हैं)

हम वो हैं जो हमें हमारी सोच ने बनाया है, इसलिए इस बात का ध्यान रखिए कि आप क्या सोचते हैं। शब्द गौण हैं। विचार रहते हैं, वे दूर तक यात्रा करते हैं।

(स्वामी विवेकानंद)

विकसित हरियाणा

पंचायती राज संस्थाओं का नव पंचशील

अब यदि आप हरियाणा की किसी भी पंचायती राज संस्था के किसी भी निर्वाचित प्रतिनिधि से मिलेंगे

तो आपको स्वत: विश्वास होगा उसके :

1. मैट्रिक* पास होने का,
2. विरुद्ध कोई घोर अपराधिक मामला ** दर्ज न होने का,
3. घर में शौचालय होने का,
4. बिजली बिल नियमित भरने के स्वभाव का,
5. सहकारी संस्थानों के देय नियमित भरने की सनद का

* महिलाओं एवं अनुसूचित जाति के उम्मीदवारों के लिए न्यूनतम शैक्षणिक योग्यता कक्षा आठवीं पास। अनुसूचित जाति की महिलाओं के लिए पंच का चुनाव लड़ने के लिए शैक्षणिक योग्यता पांचवीं पास।

** जिन व्यक्तियों के विरूद्ध सक्षम अदालत द्वारा घोर अपराधिक मामले, जिनमें कम से कम दस साल की कैद की सजा हो सकती है, निर्धारित किए गए हैं, वे कोर्ट द्वारा माफ किए जाने तक चुनाव नहीं लड़ सकेंगे।

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर
स्वच्छ हरियाणा–स्वच्छ भारत

प्रधानमंत्री मुद्रा
पूंजी, सफलता की कुंजी

पंचायती राज संस्थान - आधुनिक हरियाणा की नई आन, बान और शान

Happening HARYANA

Global Investors Summit, 07 & 08 March 2016
Pravasi Haryana Divas, 09 March 2016

To register, please visit www.happeningharyana.org or scan QR code

स्वामी विवेकानंद के चिंतन का वर्तमान शिक्षा में समावेश

– अतुल कोठारी

शिक्षा एवं संस्कार एक सिक्के के दो पहलू है। परंतु शिक्षा में संस्कार नहीं है तो वह कुशिक्षा हो जाती है। इस हेतु देश में लंबे समय से बहस चल रही है कि शिक्षा में संस्कार, मानव मूल्यों, जीवन मूल्यों, जीवन विद्या, नैतिकता, आध्यात्मिकता, धार्मिक। आदि का समावेश होना चाहिए। यह सारे शब्द अलग–2 दिख रहे हैं परंतु सबका तात्पर्य है कि शिक्षा में संस्कार होने चाहिए। क्योंकि जबसे अंग्रेज मैकॉले की शिक्षा देश में लागू हुई तब से क्रमशः यह सारी बातें शिक्षा से अलग कर दी गई। इनका मेरी दृष्टि से दो कारण है, एक तो यह मैकॉले (अंग्रेजों) का षडयंत्र था, दूसरी बात पश्चिम में इस प्रकार की शिक्षा में संस्कारों की कल्पना ही नहीं थी। मैकॉले ने भारत की शिक्षा व्यवस्था बदलने के बाद उनके पिताजी को जो पत्र लिखा था उसमें लिखा था, "पिताजी मैं भारत की शिक्षा बदलने में सफल हुआ हूं, उसका मुझे आनंद है, परंतु सच्ची सफलता तो तब मानी जाएगी कि जब हमारा शासन यहां नहीं रहेगा फिर भी यह शिक्षा व्यवस्था चलती रहेगी और उससे निकलने वाले लोग दिखने में तो भारतीय होंगे लेकिन आचार, विचार, व्यवहार से वह संपूर्ण अभारतीय होंगे, मैकॉले की भविष्यवाणी आज सही सिद्ध हो रही है। आप अंग्रेजी में बोलेंगे तो विद्वान माने जाएंगे, अपनी भाषा में बोलेंगे तो अनपढ़ माने जाएंगे, आप पापा, डैड, मम्मी बोलेंगे तो आधुनिक मानें जाएंगे, माताजी, पिताजी बोलेंगे तो पुरानपंथी माने जाएंगे, इस प्रकार के सैकड़ों उदाहरण दिए जा सकते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि हम कब तक मैकॉले को दोष देते रहेंगे। 15 अगस्त 1947 के बाद से तो हमारा शासन है, हमारे लोग सता में बैठे हैं। फिर भी हम वही अंग्रेजों की दी हुई शिक्षा व्यवस्था को ढो रहे हैं। इससे लगता है कि कहीं न कहीं सत्ता और समाज में बदलाव की इच्छाशक्ति का अभाव या कमजोरी है। अन्यथा स्वतंत्रता के बाद स्वामी विवेकानंद, स्वामी दयानंद सरस्वती, पं. मदनमोहन मालवीय, महात्मा गांधी आदि अनेक महापुरुषों के चिंतन के आधार पर शिक्षा का स्वरूप बनाकर लागू किया गया होता तो आज देश का वातावरण कुछ अलग होता।

इसी दृष्टि से इस लेख में स्वामी विवेकानंद के चिंतन एवं उपनिषद् को आधार बनाकर शिक्षा का स्वरूप बनाने पर विचार व्यक्त करने का प्रयास किया है।

स्वामी विवेकानंद ने 140 वर्ष पूर्व तत्कालीन समस्याओं के समाधान के लिए जो विचार व्यक्त किए थे, वह आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। विशेष करके स्वामीजी ने शिक्षा के बारे में जो चिंतन व्यक्त किया है, उनका वर्तमान शिक्षा में समावेश किया जाए या उन विचारों के आधार पर वर्तमान शिक्षा का ढांचा बनाया जाए तो देश की अधिकतर समस्याओं के समाधान के साथ–2 भारत समग्र विश्व को रास्ता दिखाने में पुनः सक्षम हो सकता है।

➢ विवेकानंदजी का शैक्षिक चिंतन

- चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व विकास एक सिक्के के दो पहलू है। स्वामीजी ने कहा है "किसी व्यक्ति का संपूर्ण स्वभाव अर्थात् चरित्र ही व्यक्तित्व कहलाता है।"
- स्वामीजी के विचार के अनुसार, "प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्म है। बाह्य तथा आन्तरिक प्रकृति को वशीभूत करके अपने अन्तर्निहित देवत्व को प्रकट करना ही जीवन का लक्ष्य है।"

जीवन के लक्ष्य और शिक्षा के लक्ष्य में कोई अंतर नहीं होना चाहिए। हर सामान्य मनुष्य के अंदर **देवत्व** एवं **दानवत्व** दोनों ही विद्यमान होते है। उनके अंदर विद्यमान देवत्व को जागृत एवं प्रकट करने में सहायता करना ही शिक्षा का कार्य है।

इस हेतु स्वामीजी ने शिक्षा क्या है और क्या नहीं है? दोनों संदर्भ में विचार व्यक्त किए हैं। **"शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है, जो तुम्हारे मस्तिष्क में ठूस दिया गया है और जो आत्मसात् हुए बिना वहां आजन्म पड़ा रहकर गड़बड़ मचाया करता है। मेरी दृष्टि से शिक्षा का सार तथ्यों का संकलन नहीं बल्कि मन की एकाग्रता प्राप्त करना है।"**

"हमें तो ऐसी शिक्षा चाहिए जिससे चरित्र बनें, मानसिक बल बढ़ें, बुद्धि का विकास हो और जिससे मनुष्य अपने पैरो पर खड़ा हो सके।" इसी को दूसरे रूप में कहा है **"हमें सर्वत्र सभी क्षेत्रों में 'मनुष्य' बनाने वाली शिक्षा ही चाहिए।"** स्वामीजी कहते है–**"संपूर्ण शिक्षा तथा समस्त अध्ययन का एकमेव उद्देश्य है–व्यक्तित्व को गढ़ना।"**

अभी प्रश्न यह है कि स्वामीजी के चिंतन के अनुसार मनुष्य बनाने वाली या व्यक्तित्व को गढ़ने वाली शिक्षा हो कैसे? वर्तमान शिक्षा में तो जानकारियों के ढेर के अलावा बहुत कुछ दिखाई नहीं देता है।

इस संदर्भ में स्वामीजी ने अपने विचारों में दिशा–निर्देश तो अवश्य किया है। स्वामीजी ने कहा है–चरित्र यानी क्या है? बहुत ही सरल शब्दों में समझाते हुए कहा है कि **"छोटा बालक देख–देखकर सीखता है, धीरे–धीरे वह उसकी आदत बन जाती है। लंबे समय उस प्रकार की आदतों के रहने के कारण उसी प्रकार का उनका स्वभाव बनता है, वही चरित्र है।"** अच्छी आदतें ही मूल्य हैं। हमारी शिक्षा व्यवस्था एवं परिवारों में मूल्यों की शिक्षा के द्वारा बालक सदआचरण सीखेगा। उनके आधार पर नैतिकता के रास्ते पर चलने हेतु वह सक्षम होगा। **"मनुष्य की भली प्रकृति को अभिव्यक्त करते हुए उसकी संकल्प शक्ति को सबल बनाने वाली हर चीज नैतिक है।"** जिससे चरित्रवान नागरिक निर्माण हो सकते हैं।

इसी प्रकार छात्रों का विकास कैसे होना चाहिए, इसके बारे में भी स्वामीजी ने विचार व्यक्त किए हैं। उन्होंने कहा कि **"छात्रों / युवकों को गीता पढ़ने से पहले फुटबाल के मैदान में जाना चाहिए।"** कई बार जो इन शब्दों का भाव नहीं समझते या समझना नहीं चाहते वह इनका गलत अर्थ निकालते है कि छात्रों को गीता पढ़ने की आवश्यकता नहीं। फिर तो स्वामीजी ने अपने छोटे से जीवन काल में गीता सहित हजारों ग्रंथ नहीं पढ़े होते। इस हेतु स्वामीजी के कहने का तात्पर्य इतना ही है कि हमारे छात्र / युवक शारीरिक दृष्टि से सबल होने चाहिए। आगे कहा है कि **उन छात्रों में दयाभाव और सिंह जैसा साहस पैदा हो, छात्र संयमित बनें। विद्यार्थी स्वाधीन होना चाहिए। प्रत्येक बालक को पूर्ण ब्रह्मचर्य का अभ्यास करने की शिक्षा देनी चाहिए। पुनः पुनः अभ्यास ही चरित्र का पुनर्गठन कर सकता है।** इसके अतिरिक्त स्वामीजी ने शिष्यों के लिए चार बातें कही हैं। वह इस प्रकार हैं :–

1. सत्य को जानना। 2. सहनशील बनना 3. मुक्ति की आकांक्षा होना।
4. अन्तइंद्रियों और बहिइंद्रियों को नियंत्रित करने में समर्थ होना (मनोनिग्रह सीखना)।

उपरोक्त दर्शाए गए स्वामीजी के सारे विचारों का तात्पर्य यह है कि शिक्षा ग्रहण करने के उपरांत छात्र कैसा होना चाहिए? उनका व्यक्तित्व कैसा बनना चाहिए? मेरी दृष्टि से मूल बात व्यक्तित्व की है। व्यक्तित्व विकास यह प्रक्रिया है और चरित्र निर्माण उसका परिणाम है। बालकों / छात्रों के व्यक्तित्व का विकास योग्य दिशा में होता है तो अपने आप उनका चरित्र श्रेष्ठ बनेगा।

स्वामीजी के शिक्षा संबंधित विचारों को साकार स्वरूप में क्रियान्वित करने हेतु उपनिषद् में दिए गए पंचकोश में व्यक्तित्व के समग्र विकास की संकल्पना को आधार बनाकर उस दिशा में कदम आगे बढ़ाए जा सकते हैं।

➢ स्वामीजी के उपनिषद् संबंधित विचार

उपनिषद् शक्ति की विशाल खान है उनमें ऐसी प्रचुर शक्ति विद्यमान है कि वे समस्त संसार को तेजस्वी कर सकते हैं। उनके द्वारा समस्त संसार पुनर्जीवित एवं शक्ति और वीर्य–सम्पन्न हो सकते हैं। वे समस्त जातियों को, सभी मतों को, भली–भांति संप्रदाय के दुर्बल, दुःखी और पददलित लोगों को उच्च स्वर से पुकार कर स्वयं अपने पैरों पर खड़े होने और मुक्त हो जाने के लिए कहते हैं। मुक्ति अथवा स्वाधीनता–दैहिक स्वाधीनता, मानसिक स्वाधीनता, आध्यात्मिक स्वाधीनता–यही उपनिषदों का मूल मंत्र है।

उपनिषदों में से एक तैत्तरीय उपनिषद् में चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व विकास के संदर्भ में पंचकोश की संकल्पना दी गई है। उसका सार निम्नलिखित है:–

➢ व्यक्तित्व की संकल्पना:–

- आत्मतत्त्व का व्यक्त रूप – व्यक्ति। सृष्टि पर जीवों में मनुष्य श्रेष्ठ व्यक्त रूप है।
- व्यक्ति को समझना है तो पंचकोश समझना।
- व्यक्ति की भाववाचक संज्ञा व्यक्तित्व। इनके दो भाग है –1. स्थूल शरीर 2. सूक्ष्म शरीर
- कोश का अर्थ आवरण / स्तर।
- मैं कौन हूं ! इस प्रश्न का जैसा हमारा उत्तर वैसा हमारा स्तर होता है।

➢ पंचकोश :–

1. अन्नमय कोश 2. प्राणमय कोश 3. मनोमय कोश
4. आनंदमय कोश 5. विज्ञानमय कोश

➢ अन्नमय कोश (शारीरिक विकास)

स्वामीजी ने कहा है **"बल"** ही जीवन है, दुर्बलता **"मृत्यु"**।

- शरीर के दो भाग – अर्थात् – 1 बाह्य 2. आंतरिक
- शरीर को जानना
  - अंग–उपांगों की रचना समझना – उनके कार्यों को जानना
  - उनकी कार्यपद्धति समझना – उनको ठीक कैसे रखना यह जानना।
- शरीर को स्वस्थ, सबल, निरामय, लोचपूर्ण, ओजपूर्ण, सहनशील, सुडौल रखना अर्थात् शारीरिक विकास।

➢ प्राणमय कोश (प्राणिक विकास)

- एक प्रकार से शरीर यंत्र है इसलिए अपने आप कार्य नहीं करता। वह प्राण शक्ति से संचालित होता है। **नियमित श्वास–प्रश्वास से शरीर की दशा संतुलित होती है।** शरीर को चलाने की ऊर्जा प्राण है। प्राण अधिक सूक्ष्म है, संपूर्ण शरीर में व्याप्त होता है। **प्राण के चार आवेग हैं** :– आहार, निद्रा, भय, मैथुन इसी प्रकार **आहार के मुख्य तीन प्रकार है,** अन्न, जल एवं वायु।

➢ मनोमय कोश (मानसिक विकास)

– मन प्राण से भी सूक्ष्म है।

- **मन के विकार** – लोभ, मोह, मद, मत्सर, काम, क्रोध आदि
- मन के भाव –दया, करुणा, अनुकंपा, स्नेह, सहानुभूति आदि

- **साधारण मन का स्वभाव चंचल है और नीचे की तरफ जाने का (पानी जैसा) यानी नकारात्मकता की ओर झुकाव होता है। परंतु मन एकाग्र एवं सकारात्मक हो सकता है।** मन को शांत, एकाग्र, अनासक्त एवं सकारात्मक करना ही मन का विकास है।
- **स्वामीजी के अनुसार**
  - मन के विकारों को कम करना एवं भावों को बढ़ाना, यह मन का विकास है।
  - सेवा, सत्संग, स्वाध्याय एवं ध्यान से मन स्वस्थ होता है।
  - जब तक मन इस प्रकार का नहीं होता तब तक बुद्धि ठीक से कार्य नहीं करती।
  - ज्ञान की प्राप्ति के लिए केवल एक ही मार्ग है, वह है 'एकाग्रता'। मन की 'एकाग्रता' ही शिक्षा का संपूर्ण सार है।
  - जिस मनुष्य का मन उसके अधीन होगा, वह निश्चय ही दूसरों के मनों को अपने अधीन कर सकेगा।

➢ विज्ञानमय कोश (बौद्धिक विकास)

- **मन –द्वंदात्मक, बुद्धि– निश्चयात्मक है।**
  - ज्ञान शब्द बुद्धि के साथ जुड़ा है।
  - बुद्धि के कार्य

1. निरीक्षण	2. परीक्षण	3. तर्क	4. संश्लेषण
5. विश्लेषण	6. अनुमान करना	7. विवेक	8. निर्णय

स्वामीजी के विचारों से – बुद्धि तेजस्वी, तीक्ष्ण, शुद्ध एवं ग्रहणशील बने तथा अपने विवेक के द्वारा निर्णय करने का कार्य ठीक करे। इस हेतु मन स्वस्थ रहना आवश्यक है।

➢ आनंदमय कोश (आध्यात्मिक विकास)

- चित्त का स्वभाव आनंद, प्रेम, सौंदर्य, स्वतंत्रता, सहजता।
- "आत्मनो मोक्षार्थं, जगत् हिताय" अर्थात् जगत् के हित में ही मोक्ष की प्राप्ति है।
- "स्व" में स्थित को स्वस्थ कहते है, उसके लिए संज्ञा है स्वास्थ्य। निरामयता शरीर स्वास्थ्य को कह सकते हैं।

विवेकानंद के चिंतन के अनुसार

- औरों का हित करना आत्मविकास का एक उपाय है।
- जिसमें जितनी अधिक निःस्वार्थपरता है, वह उतना ही आध्यात्मिक है।

  स्वयं के भीतर देखने का स्वभाव बने जिससे व्यक्ति अपने आप को पहचानने की दिशा में कदम बढ़ाता है, वहीं से आध्यात्मिकता प्रारंभ होती है।

  इस संकल्पना के अनुरूप छात्रों को दृष्टि प्राप्त हो सके इस प्रकार की शिक्षा का स्वरूप बने यही आध्यात्मिक शिक्षा है।

इस प्रकार स्वामी विवेकानंद के चिंतन एवं पंचकोश को आधार बनाकर शिक्षा के स्वरूप को विकसित किया जाता है तो छात्रों के व्यक्तित्व के समग्र विकास एवं चरित्र निर्माण के द्वारा वह अपने एवं परिवार का निर्वाह करते हुए समाज को भी कुछ देने हेतु सक्षम होगा, साथ ही मेरे जीवन का तात्पर्य क्या है? मात्र अर्थ प्राप्त करने तक सीमित है क्या? अर्थ एवं कामनाओं की पूर्ति धर्माधिष्ठित हो तभी मोक्ष की प्राप्ति की जा सकती है. इस प्रकार की दृष्टि प्राप्त हो सकेगी। यही भारतीय शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य है।

(लेखक शिक्षा, संस्कृति उत्थान न्यास में राष्ट्रीय सचिव हैं)

आध्यात्मिकता और युवा-मस्तिष्क

– आचार्य अरुण दिवाकर नाथ वाजपेयी

मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि आज विश्व समाज की जितनी समस्याएं हैं, विकृतियां, संकट हैं, वह सब आध्यात्मिकता से दूर जाने के कारण हैं। हमारा समाज दो भागों में बंटा हुआ प्रतीत होता है। एक बहुत छोटा वर्ग जिसके पास में सब कुछ है एवं एक बहुत बड़ा वर्ग जिसके पास कुछ भी नहीं। समष्टि में हमारा समाज रुग्ण, चिंताग्रस्त, विभक्त, अस्थिर एवं असंपोष्य है। धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र, आर्थिक स्तर एवं राजनीति जैसे विघटनकारी तत्त्व समाज को बांटने में संलग्न है और विडंबना यह है कि इन पर गंभीरता से कोई विचार नहीं कर रहा है। आधुनिक शिक्षा पद्धति में भी ऐसे तत्त्वों का समावेश नहीं है जिनसे समरस, स्वस्थ एवं सुयोग्य समाज की संरचना हो सके।

हम जानते हैं कि परिवर्तन, रूपांतरण और क्रांति जब–जब हुई है तब–तब युवाओं के कारण। युवा मस्तिष्क की ऊर्जा ने अतीत में बड़े–बड़े नवाचार किए हैं और आज भी वह करने में सक्षम है। अतीत से प्रेरणा लेकर वर्तमान को सुसज्जित करना और भविष्य का निर्माण करना युवा मस्तिष्क का कार्य है पर यह तभी संभव होगा जब वो सकारात्मक ऊर्जा से परिपूर्ण हो। यदि युवा मस्तिष्क निषेध और नकार का मार्ग अपनाता है तो विध्वंसात्मक भी हो सकता है। आपको ज्ञात ही है कि भारतवर्ष विश्व में सबसे अधिक युवा शक्ति सम्पन्न राष्ट्रों में एक है।

और जैसे–जैसे समय व्यतीत हो रहा है भारतवर्ष में युवा शक्ति का परिमाण बढ़ रहा है अतः आवश्यकता इस बात की है कि इस युवा शक्ति, युवा मस्तिष्क, युवा चिंतन को ऐसे विचारों से आपूरित किया जाए जिससे न केवल पूरे भारतवर्ष को अपितु पूरे विश्व को दिशा मिल सके।

भारतवर्ष एक आध्यात्मिक देश है और इसने सहस्त्रों वर्षों से अपनी आध्यात्मिक पूंजी को संचित कर रखा है, इसी से प्रेरणा लेकर अपने जीवन को व्यवस्थित किया है परंतु दुर्भाग्यवश पाश्चात्य के भौतिकवादी प्रभाव ने हमारी आध्यात्मिकता को छोड़कर आधुनिकता को आरोपित कर दिया है जिससे अनेकानेक समस्याएं उत्पन्न हो गई हैं और हमारा युवा मस्तिष्क भी विचलित और दिशाहीन हो रहा है।

प्रायः आध्यात्मिकता और धर्म को पर्यायवाची माना जाता है परंतु मैं इन दोनों को भिन्न–भिन्न मानता हूं और धर्म की अवधारणा का प्रयोग जानबूझ कर नहीं करता क्योंकि आज के संदर्भ में जिस प्रकार धर्म का प्रयोग हो रहा है उसमें आडंबर, असत्य, वर्ग सापेक्षता, शोषण इत्यादि प्रत्यक्ष दिखाई दे रहे हैं।

आध्यात्मिकता धर्म का अदृश्य मर्म है जो सभी में हर समय, हर स्थान पर विद्यमान रहता है। यदि एक वाक्य में आध्यात्मिकता का तात्पर्य स्पष्ट करने के लिए कहा जाए तो मैं कहूंगा, 'आत्मा की विशेषताओं को जीवन में उतारने, व्यवहार में लाने का नाम आध्यात्मिकता है'। अतः आत्मा की विशेषताओं को व्यवस्थित करना आवश्यक होगा। मैं संक्षेप में आत्मा की सामान्य विशेषताओं को बताने का प्रयास करूंगा।

हमारे धर्मग्रंथ तथा दैनंदिन विचारों के आदान–प्रदान में हम सभी लोग आत्मा की अमरता पर विश्वास रखते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता, उपनिषद् एवं अन्य ग्रंथ यह स्थापित करते हैं कि आत्मा का अस्तित्व जन्म से पहले और मृत्यु के पश्चात् भी है। व्यक्ति के जन्म के साथ इसका जन्म नहीं होता एवं मृत्यु के साथ यह मरती नहीं। अतः दीर्घकालिकता अथवा चिरकालिकता अथवा अमरता अथवा अजरता इसकी प्रमुख विशेषताएं हैं। इसी विशेषता से हमारे जीवन में दीर्घकालीन दृष्टि उत्पन्न होनी चाहिए जो कि हमारे पूर्वजों के पास थी। परंतु आज के समय में हम देखते हैं कि तात्कालिक प्रतिफल पाने की, रातों–रात, येन्–केन् प्रकारेण सफलता अर्जित करने की भावना विद्यमान है। Nothing succeed like succes ही जीवनयापन का मूलमंत्र बना हुआ है जिससे समाज में स्वार्थपरता के साथ–साथ कई विकार आ गए हैं जो कि उचित नहीं है। दीर्घकालीन दृष्टि में 'अनुकूलता' का भी भाव समाविष्ट है प्रत्येक कार्य के प्रारंभ और उसके प्रतिफलित होने के मध्य अनुकूलतम अवधि लगती है, उसे प्रकृति, विज्ञान, तकनीकी सभी स्वीकार करते हैं लेकिन

मानव का कुत्सित मस्तिष्क उसे कम करने में विश्वास करता है जिससे अनैतिकता, भ्रष्टाचार जैसी कुरीतियां उपजी हैं। आवश्यकता इस बात की है कि तात्कालिकता, अल्पकालिकता को अनुकूलता के साथ दीर्घकालिकता से प्रतिस्थापित करें।

आत्मा की दूसरी विशेषता सार्वत्रिकता अथवा सार्वभौमिकता है। आत्मा सारे स्थानों में, पूरी पृथ्वी पर, सारे ग्रहों, नक्षत्रों, सारे ब्रह्माण्ड में विद्यमान है। अतः क्षेत्र को पृथक–पृथक कर निर्णय करना एवं व्यवहार करना उचित नहीं है। आज यह देखा जा रहा है कि विकसित देश विकासशील देशों का शोषण कर रहे हैं। चीन ने तिब्बत पर कब्जा कर लिया है तथा भारत की सीमाओं पर प्रायः आक्रमण करता रहता है, भारत और पाकिस्तान का बंटवारा और तत्पश्चात् सीमा विवाद अभी भी बना हुआ है। भारत में भी विकसित राज्यों और पिछड़े राज्यों, शहरों एवं ग्रामीण क्षेत्रों के मध्य स्पष्ट अंतर दिखाई पड़ता है जिसे क्षेत्रीय विषमताओं के अंतर्गत व्यक्त किया जाता है। यह क्षेत्रीय विषमताएं उचित नहीं हैं और दीर्घकाल में किसी समाज के समरस, स्वस्थ एवं संपोष्य होने में बाधा पहुंचाती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि विभिन्न क्षेत्रों की नैसर्गिक विशेषताओं को सम्मान देते हुए क्षेत्रीय अंतराल यथाशीघ्र समाप्त हो और क्षेत्र के संदर्भ में व्यक्तिगत पूर्वाग्रह को सार्वजनिक नीति में स्थान न दिया जाए।

आत्मा की एक अन्य विशेषता है कि यह पृथ्वी पर रहने वाली सभी मानव, मानवेतर प्रजातियों में एक जैसे निवास करती है और इसी भावना को 'वसुधैवकुटुंबकम्' के अंतर्गत उद्घोषित किया गया है। पृथ्वी पर भिन्न जाति धर्म, भाषा, भेष और भोग करने वाले लोग रहते हैं इसमें भिन्न आयु एवं लिंग के लोग भी सम्मिलित हैं साथ ही विभिन्न वनस्पतियां, सागर, पर्वत, पशु, पक्षी इत्यादि भी हैं, इन सभी में आत्मा का वास है। इसलिए सबके प्रति आदर, प्रेम, विश्वास, सहयोग एवं सहचार करना मानव का धर्म बनता है। आज पर्यावरण का संकट संपोषणीयता के लिए सबसे बड़ा संकट है। इसका निदान प्रकृति और पुरूष के मध्य मैत्री भाव के अतिरिक्त सम्भव नहीं है। साथ ही महिलाओं के प्रति दुर्व्यवहार आधुनिक सभ्यता का स्वभाव बन चुका है इसका निदान भी आध्यात्मिकता के अतिरिक्त दिखाई नहीं पड़ता। जब तक हम सम्मुख स्त्री में अपनी पुत्री, बहन या मां के दर्शन नहीं करते तब तक इस समस्या का समूल निराकरण नहीं हो सकता। इसी प्रकार धर्म को लेकर बहुत अधिक असहिष्णुता बढ़ रही है। नैरोबी में एक धर्मावलंबी ने अपने धर्म के अतिरिक्त सभी धर्म के मानने वालों की जघन्य हत्या कर दी। मुजफ्फरनगर की घटना सबको ज्ञात ही है। सांप्रदायिक दंगे हमारे भारतवर्ष की पहचान बने हुए हैं। इसका एकमात्र समाधान आध्यात्मिकता में ही है। यदि एक ही आत्मा का निवास हिंदू, मुस्लिम, जैन, बौद्ध, सिख, ईसाई में है तो परस्पर झगड़े क्यों? इसी से यह भाव भी उत्पन्न होता है कि एक धर्म दूसरे धर्म को परिवर्तित करने के लिए प्रेरित अथवा विवश क्यों करता है जिसे संक्षेप में 'धर्मांतरण' कहा जा सकता है। जातियों को लेकर भी भारतवर्ष की निंदा आज भी की जाती है। वर्ण व्यवस्था के अंतर्गत स्वर्ण और अस्पृश्य समाज का आबंटन और उसके अनुसार व्यवहार के आयाम निर्धारित करना सर्वथा अनुचित, अनावश्यक और पातक है। जब एक ही आत्मा का वास प्रत्येक शरीर में है तो वह चाहे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा अन्य कोई हो सबको समाज में परस्पर एक साथ रहने, विचरने, व्यवहार करने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि जब ईश्वर ने अपने अवतरण का कोई पूर्वाग्रह नहीं माना तो मानवों ने यह पूर्वाग्रह क्यों रखा है। उदाहरण के तौर पर ईश्वर ने मत्स्य के शरीर में, शूकर के शरीर में, आधे शेर एवं आधे मानव के शरीर (नृसिंह), यदुवंशीशरीर में, (भगवान् कृष्ण) क्षत्रिय शरीर में (भगवान् राम) ब्राह्मण के शरीर में (परशुराम) में अवतार लेकर वर्ण व्यवस्था को गुणात्मकता के सिद्धांत को स्वयं ध्वस्त कर दिया है। लेकिन दुर्भाग्य इस बात का है कि भारतवर्ष की इस आध्यात्मिक समाज संरचना को न तो सही ढंग से समझा गया, न ही व्यवहार में लाया गया। पहले मुगलों ने, पुनः अंग्रेजों ने, तत्पश्चात् आधुनिक राजनेताओं ने इस भावना को और अधिक उभार कर अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति की है। हमें वर्ण व्यवस्था को सही परिप्रेक्ष्य में समझकर पुनः स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए।

आत्मा की चौथी विशेषता यह है कि यह अत्यंत गंभीर है, अगोचर है, सूक्ष्मातिसूक्ष्म है अतः हमें हमारे अंदर अदृश्य जगत् की छिपी हुई तरंगों को पकड़ने का गंभीर प्रयास करना चाहिए। दिखाई यह पड़ता है कि हम अत्यंत सतही प्रयास करते हैं और किसी भी विषय का गंभीरता से अनुशीलन नहीं करते हैं, इसलिए श्रेष्ठ रचनाओं का सृजन नहीं हो पा रहा है। भारतवर्ष ने विश्व को जो सर्वश्रेष्ठ साहित्य, भाषा, ज्ञान एवं विज्ञान प्रदान किया है वह इसी आध्यात्मिक गंभीरता का सुपरिणाम है। हमें भी चाहिए कि किसी विषय अथवा घटना के बारे में गंभीर अध्ययन एवं अनुशीलन कर उसके सारे आयामों को ध्यान में रखकर निर्णय लेने का प्रयास करें। इसी से जुड़ा हुआ एक तथ्य यह भी है कि जब सारे विषय, घटनाओं अथवा व्यक्तियों का

गंभीरतापूर्वक अध्ययन किया जाएगा तो एक ही तत्त्व की विद्यमानता प्राप्त होगी उसे 'सत्य' कहा जाए या 'आत्मा'।

आत्मा की पांचवीं विशेषता है कि वह शरीर के प्रत्येक अंग में, पैर की अंगुली से लेकर शिखा तक न केवल निवास करती है अपितु सबको एक सूत्र में बांधे रहती है। शरीर के विभिन्न अंगों का, मन से मन का, बुद्धि से बुद्धि का, प्रज्ञा से एकीकरण का कार्य भी सुंदरता से बिना कोई हलचल किए 'आत्मा' ही करती है। इस विशेषता से समाज के विभिन्न वर्गों को एक दूसरे के साथ अनुपातिक रूप से संबद्ध रखने की दृष्टि प्राप्त होती है। इसे सामाजिक एकीकरण भी कहा जा सकता है।

आत्मा शरीर की स्वामिनी है परंतु चक्षुओं को देखने का, कर्णों को सुनने का, नासिका को सूंघने का, मुख को बोलने का, मस्तिष्क को सोचने का, हाथों को कार्य करने का, पैरों को चलने का श्रेय देती है। वह किसी कार्य का श्रेय नहीं लेती है। अतः 'अहंकार का भाव' अनाध्यात्मिक भाव है जिससे आज का समाज ग्रस्त है। आज समाज में उद्दण्डता, उच्छृंखलता, स्वार्थपरता, 'सब कुछ अपने लिए, कम से कम समय में और वह भी प्रदर्शन के लिए', यह आज के समाज की सोच के संकेत हैं। प्रतियोगिता यहां तक कि गलाकाट प्रतियोगिता करने से भी संकोच नहीं है। यह किसी भी सभ्य, सुसंस्कृत समाज के स्थापित मूल्यों की दृष्टि से उचित नहीं कहा जा सकता :

उपर्युक्त कुछ विशेषताएं हैं जो कि आत्मा के स्वरूप से संबंधित है और उन्हीं से आध्यात्मिकता का भाव विकसित हुआ है। इन्हें संक्षेप में निम्न प्रकार से रखा जा सकता है।

1. दीर्घकालिकता– जिसमें अनुकूलतम का भाव समाविष्ट हो।
2. सार्वभौमिकता– जिसमें प्रत्येक क्षेत्र की नैसर्गिक विशेषताओं का सम्मान हो।
3. सर्वसमावेशिकता– जिसमें सारी मानव एवं मानवेतर प्रजातियों में परस्पर संबंधों का महत्त्व हो।
4. प्रत्येक कार्य में गंभीरता जिसमें प्रच्छन्न रहस्यों को ज्ञात करने की जिज्ञासा हो।
5. एकात्मता (Intigration) जिसमें अनुपातिक सम्मान एवं एक सूत्र में बांधने का लक्ष्य हो।
6. अहंकारविहीनता– जिसमें परोपकार, त्याग, प्रेम, विश्वास इत्यादि मूल्यों का समावेश हो एवं स्वार्थ, विद्वेष एवं प्रतियोगिता की विहीनता हो।

बंधुओं! यदि हम अपने चारों ओर बिखरे समाज का लेखा–जोखा लेते हैं तो हमें उपर्युक्त विशेषताओं का अभाव प्रतीत होता है। युवा मस्तिष्क, जिसे कि भविष्य में समाज निर्माण की महत्त्वाकांक्षी योजना को साकार करना है, को भारतवर्ष की आध्यात्मिक पूंजी पर अपनी व्यूहरचना को बनाना होगा। धर्मनिरपेक्षता में यद्यपि यह एक भाव ऐसा समाविष्ट किया गया है कि धर्म को सामाजिक निर्णयों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। मेरा मानना है कि धर्म का कर्मकांडीय अथवा दिखाई पड़ने वाला स्वरूप है उसका निषेध होना चाहिए परंतु उसका मर्म जो आध्यात्मिकता है उसे स्वीकार करना चाहिए।

युवा–मस्तिष्क को जातीय, धर्म, भाषा, क्षेत्रीयता, इत्यादि सारे ऐसे तत्त्व जो समाज को तोड़ते हैं उन्हें उतारकर, आध्यात्मिक मूल्यों से भरपूर होना चाहिए जिसमें एक दीर्घकालिक दृष्टि हो, सारे स्थानों के प्रति सम्मान हो, सारे मानव और मानवेतर प्रजातियों के साथ प्रेमभाव हो, विषय, व्यक्ति एवं स्थान को समझने के प्रति गंभीरता हो। किसी प्रकार का अहंकार न हो। जब युवा–मस्तिष्क इन विचारों की शक्ति से सम्पन्न होगा तब उसके अंदर विवेकपूर्ण निर्णय लेने की क्षमता होगी, करणीय एवं अकरणीय के मध्य अंतर कर सकेगा, सत्य को सत्य एवं असत्य को असत्य कहने की सामर्थ्य होगी, असंभव से असंभव नवाचारों को करने का उसमें साहस होगा और बड़े से बड़े विरोधों और अवरोधों का अतिक्रमण करने में वे सक्षम होंगे ।

भारतवर्ष ने ऐसे युवाओं को जन्म दिया है जिसके एक प्रमाण स्वामी विवेकानंद हैं। यह विवेकानंद हम सभी के अंदर जीवित हैं। आवश्यकता है उसे जागृत करने की। मैं विवेकानंद के उस श्रेष्ठ उद्घोष के साथ अपना उद्बोधन संपन्न करता हूं–

उत्तिष्ठत जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत

(उठो, जागो तथा लक्ष्य प्राप्ति होने तक रुको मत!)

(लेखक हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के कुलपति हैं)

BEST COMPLIMENTS

from

IKC

Indian Knowledge Corporation Ltd.

Academic and Publication Support • Capacity Building and Performance Management
Analytics and Performance Management • Advisory and Project Management
Accreditation Advisory • Technology Solutions

Corporate Office: J.M. Road, Pune-411004 • www.ikcl.in

भारतीय राष्ट्रीय संकल्पना

– डॉ. पवन कुमार शर्मा

भारत में आदि काल से ही इस पृथ्वी के प्रति मातृभाव रहा है और उसी के परिणामस्वरूप इसके साथ और इससे संबंधित अन्यों के साथ भारतीयों ने आत्मीय संबंध माना है। इन सबके आदि प्रमाण के रूप में हम वेदों को आधार मान सकते हैं। ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर पृथ्वी के साथ माता–पुत्र का संबंध है, का उल्लेख हुआ है। बाद में यही भावना यजुर्वेद और अथर्ववेद से होकर पौराणिक ग्रंथों में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। अथर्ववेद का एक सूक्त तो माता–पुत्र के पर्याय के रूप में सर्व सामान्य के द्वारा प्रायः प्रयुक्त ही किया जाता है। "माता भूमिः पुत्रोहम पृथ्वियाः।" यानी, यह भूमि मेरी माता और मैं इसका पुत्र हूं। बाद में इसी पवित्र भाव ने इस पृथ्वी पर या उसके संसर्ग में रहने वाले या आने वाले समस्त तत्वों के साथ बंधु–भगिनी का भाव जाग्रत कर दिया, चाहे वे तत्त्व जड़ रहे हों या चेतन।

इसी भाव के वशीभूत भारत में सभी के प्रति समत्व के भाव का भी जागरण हुआ। इसी कारण ईशावास्य उपनिषद् के ऋषि ने संपूर्ण सृष्टि में ईश्वरत्व को देखा और समस्त संसाधनों का उपभोग त्यागपूर्वक करने का निर्देश दिया। भगवान् श्री कृष्ण ने भी श्रीमद् भगवद्गीता में अर्जुन को योग क्षेत्र का उपदेश दिया ओर कर्म के महात्म्य को स्थापित किया। यही कारण रहा और युग–युगों से भारतीयों के हृदय में यह भाव स्थापित रहा और इसके ही कारण सभी का जीवन चक्र गतिशील रहा। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर ऋषियों ने भारत के सभी तत्त्वों का महत्त्व इसके निवासियों को समझाने के प्रयास किए। इसलिए ऋषियों ने इस पृथ्वी को ऐश्वर्यदायी मानते हुए इसके प्रमाण भी हम सभी के सम्मुख प्रस्तुत किए। ऋषि यह समझाने का प्रयास करते हैं कि मात्र कहने भर के लिए ही यह ऐश्वर्यशाली नहीं है बल्कि इसके बच्चे सुखी, समृद्ध, सफल एवं आनंद से रह सकें इसके लिए उसने इस पृथ्वी पर समस्त संसाधन भी उपलब्ध करवाए हैं यथा– यह पृथ्वी, अन्न, जल, घी–दूध, मनोरम पर्वत, पहाड़, नदियां, झरने, पशु–पक्षियों के अतिरिक्त नाना प्रकार के फल–फूलों से लदे हुए वृक्षों को स्वयं में धारण किए हुए हैं। अनेक प्रकार की वनस्पतियां जिनका उपयोग हम औषधि के रूप में करते हैं, भी हमें यही पृथ्वी प्रदान करती है। इस पृथ्वी पर ही स्थित अनेक खानों से हमें बहुमूल्य रत्न तथा धातुएं भी प्राप्त होती हैं। अनेक नदियां न केवल अमृत सदृश जल प्रदान करती है बल्कि अपने रेतकणों से हमें स्वर्ण प्रदान करके आर्थिक रूप से समृद्ध भी करती रही है। यह भारत भूमि इस पृथ्वी पर उपलब्ध सभी भूमियों से श्रेष्ठ है क्योंकि मनुष्यों/प्राणियों से संबंधित श्रेष्ठ जलवायु और वातावरण को इसने धारण किया है।

इस भारत भूमि की प्राकृतिक रूप से सीमाकंन का कार्य भी प्रकृति ने स्वयं करके इसे सभी ओर से और सर्व प्रकार से सुरक्षित एवं संरक्षित भी किया है। इसलिए ही मनु ने अपने विचारों के माध्यम से शेष मानव जाति को यह समझाने का प्रयास किया कि श्रेष्ठत्त्व की प्राप्ति करने के लिए आपको भारतीयों के सम्मुख ही आना होगा, क्योंकि जीवन के श्रेष्ठतम मंत्र को इन्हीं लोगों ने गुना हैं। वे कहते हैं–एततदेश प्रसूतस्य सकाशदग्रजन्मन। 'स्व–स्व' चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्या सर्वमानवा।" इस देश के गुरूजनों के पास पृथ्वी भर के सब लोग आएं और जीवन के मार्ग को सुखमय बनाने की शिक्षा प्राप्त करें। मनु जिस मार्ग को सुखमय जीवन का आधार मानते हैं वह मार्ग है राष्ट्र भाव का जागरण। यानी, इस पृथ्वी के साथ माता–पुत्र के संबंधों की स्थापना। माता–पुत्र के संबंधों की स्थापना के माध्यम से शोषण मुक्त समाज का निर्माण संभव है। एक भौगोलिक इकाई मानकर यह भाव उत्पन्न नहीं होता। भारतीय ऋषियों ने इस भाव के निर्माण करने में युग–युगों की साधना का उपयोग किया। एक दिन या राज्य पोषित कुछ कार्यक्रमों के करवा लेने मात्र से यह भाव निर्मित नहीं होता है। हमारे सम्मुख अनेक राष्ट्र ऐसे भी हैं जो कि आज तक इस पृथ्वी के साथ तारतम्य नहीं बिठा पाए और इसको महाद्वीपों के मध्य बंटा हुआ मानकर अपनी मनमर्जी का व्यवहार करते हैं। परिणाम वैश्विक उष्णता के रूप में हमारे समक्ष है। भारतीय साहित्य में आदिकाल से पृथ्वी के शोषण के विरुद्ध संघर्ष के प्रसंग उपलब्ध है।

इसलिए, वेदों में राष्ट्रनायक उसको माना है जोकि इस पृथ्वी को माता के रूप में स्वीकारे और उसी के अनुरूप आचरण भी करे; यदि कोई ऐसा करने में असमर्थ है तो वह राष्ट्रनायक कहलाने का अधिकारी नहीं है, क्योंकि उसमें समत्व का अभाव है। वेद ऐसे राष्ट्रनायक को जो समत्ववादी हैं, को 'पांचजन्य' के नाम से संबोधित करते हैं। पांचजन्य यानी जो पांच जकारों यथा–जल, जंगल, जमीन, जन और जानवरों को एक समान मानकर व्यवहार करता हो, वही सही मायनों में पांचजन्य कहलाने के योग्य है और उसे ही राष्ट्र का नायकत्व प्रदान किया जा सकता है। इन पांच जकारों का जिसने समुचित ज्ञान कर लिया उसके द्वारा इस पृथ्वी का कल्याण सुनिश्चित ही है और जो ऐसा नहीं कर सकता उसे सुख का अधिकार ही नहीं हैं। भारतीय संस्कृत वांग्मय में सैकड़ों प्रसंग इसी बात को लेकर उपलब्ध हैं या यों कहा जाए तो ज्यादा समीचीन होगा कि संपूर्ण वांग्मय का आधार यह संघर्ष ही है। जो इन पंच जकारों में समस्वभाव रखता है वही विराटत्व को प्राप्त हो सकता है। भगवान् श्री कृष्ण का गीता में जो विराट् रूप प्रकट हुआ है वह इसी एकात्म भाव या समत्व का प्रतीक है। पंचजकारों में समत्व की प्राप्ति के अभाव में विराट् स्वरूप की उपलब्धता असभंव ही है। ऋषियों–महर्षियों ने इसी विराट् के चैतन्य स्वरूप को जागृत करने की बात स्थान–स्थान पर कही है। जब तक यह विराट् जागृत नहीं होगा तब तक इसी पृथ्वी पर कल्याणकारी राज्य की स्थापना असंभव है। आज संपूर्ण जगत् में अनेक समस्याओं को लेकर ऊहा–पोह का वातावरण बना हुआ,, लेकिन कोई समाधान नहीं सूझता। कारण, क्योंकि हमने मात्र और मात्र मनुष्य को ही इस पृथ्वी का उपभोक्ता मान लिया है जबकि सत्यता यह है कि यह पृथ्वी मात्र मनुष्यों के लिए ही नहीं हैं अपितु उन सबके लिए भी है जिनसे इस मनुष्य का सदैव संपर्क रहता है और वे उसके विकास में सहयोगी होते हैं। इसीलिए वेदों का ऋषि 'पांचजन्य' की बात कहता है। जो भी व्यक्ति या व्यवस्था पंच जकारों के विषय में गंभीर है वही सुशासन की अधिष्ठाता है, वही एकात्म भाव की पोषक है। ऋषि इस बात से परिचित था कि जब तक पृथ्वी के साथ मातृ भाव की स्थापना नहीं होगी तब तक इसका शोषण जारी रहेगा। यही कारण था उसने एक पूरा तंत्र इस प्रकार का खड़ा किया जो न केवल स्वयं को समृद्ध कर सके बल्कि इस पृथ्वी को भी समृद्धशाली बना सके। उसने ऐसा करने के लिए तीन ऋणों (पितृ ऋण, देव ऋण, ऋषि ऋण) का विधान सुनिश्चित कर दिया। इन ऋणों को मनुष्य की मुक्ति के साथ जोड़ दिया, जो कि एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। इन ऋणों के दायित्व भी सुनिश्चित कर दिए।

1. **पितृ ऋण**– यानी इस सृष्टि का विकास हो, इसके लिए संतानोत्पत्ति एक सहज प्रक्रिया बने और यह बात सभी पांच जकारों पर लागू हो।

2. **देव ऋण**– यानी प्रकृति ने हमें जो दिया हैं हम उसका पोषण करें, यह भी सभी के लिए अनिवार्य था।

3. **ऋषि ऋण**– यानी जो हमने जीवनोपयोगी ज्ञान परपंरा से प्राप्त किया है वह भी हम आने वाली पीढ़ियों को देकर जाएं। इस प्रकार यह व्यवस्था न केवल मनुष्यों के लिए अनिवार्य हो बल्कि सभी तत्त्वों जो पृथ्वी के पोषण में भूमिका निर्वहन करते हैं, के लिए भी अनिवार्य थी। युग–युगीन भारतीय राष्ट्र इन्हीं तत्त्वों से पोषण प्राप्त करता रहा। किंतु, आज कुछ तत्त्व जो इस भूमि को माता नहीं अपितु भूमि का टुकड़ा मात्र मानकर व्यवहार कर रहे; वे इसे उपभोक्तावादी संस्कृति की राह पर लेकर चल रहे हैं जो कि भारतीय विचार नहीं है। इसलिए यह ऋण व्यवस्था चरमरा रही है और राष्ट्रत्व भाव भी जन सामान्य के मन से तिरोहित हो रहा है। अतः यह आवश्यक है कि हम अपनी युवा पीढ़ी को भारतीय राष्ट्रीय संकल्पना से अवगत कराएं, जिससे वह अधिकतम लोगों के, अधिकतम सुख की कामना के सिद्धांत/व्यवहार से विलग होकर पुनः ऋषि वाणी में उच्चारण करने लगे–

"सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे संतु निरामया।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चित् दुख भाग् भवेत्।।"

(लेखक अटल बिहारी वाजपेयी हिंदी विश्वविद्यालय, भोपाल में समाज विज्ञान संकाय के अधिष्ठाता हैं।)

धन्य हैं वे लोग जिनके शरीर दूसरों की सेवा करने में नष्ट हो जाते हैं ।

(स्वामी विवेकानंद)

विजेता बनने का सपना और संकल्प

– प्रो. राकेश सिन्हा

महर्षि अरविंद ने कहा था, "हमें अपने अतीत की वर्तमान के साथ तुलना करनी होगी और अपनी अवनति के कारणों को समझना तथा दोषों और रोगों का इलाज ढूंढना होगा। वर्तमान की समालोचना करते हुए हमें एकपक्षीय भी नहीं बन जाना चाहिए और न हमें, हम जो कुछ हैं या जो कुछ कर चुके हैं उस सबकी मूर्खतापूर्ण निष्पक्षता के साथ निंदा ही करनी चाहिए। हमें अपनी असली दुर्बलता तथा इसके मूल कारणों की ओर ध्यान देना चाहिए, पर साथ ही अपने शक्तिदायी तत्त्वों एवं अपनी स्थायी शक्यताओं पर और अपना नव–निर्माण करने की क्रियाशील प्रेरणाओं पर और भी दृढ़ मनोयोग के साथ अपनी दृष्टि गड़ानी चाहिए।" (श्री अरविंद साहित्य समग्र, खण्ड–1, भारतीय संस्कृति के आधार, पृष्ठ 43 से उद्धृत)

किसी व्यक्ति, जाति व राष्ट्र के पराभव के पीछे कौन से भाव व भावना का संचार होता है, इसका उत्तर विश्व के इतिहास में विद्यमान है। हीनता व अहं दोनों ही राष्ट्र के व्यक्तित्व को दीमक की तरह नष्ट कर देते हैं। अपने प्रति, अपने पूर्वजों, परंपरा, इतिहास, साहित्य, भाषा व संस्कृति के प्रति जब हीनता का भाव व्याप्त हो जाता है तब न सिर्फ राष्ट्र का मनोबल टूटता है बल्कि दासत्व में आनंद व प्रतिष्ठा महसूस होने लगती है। औपनिवेशिक काल में जब हीनता का भाव प्रबल था तब लोग यूरोपनिष्ठ बनने में, पाश्चात्य संस्कृति का अनुकरण करने में गौरवान्वित अनुभव करते थे। इसी हीनता पर साहित्यकारों, समाज सुधारकों व राजनेताओं ने संवाद, संघर्ष एवं सुधारवाद के द्वारा प्रहार कर लोगों को जब उससे मुक्त किया तब राष्ट्रीयता, राष्ट्रबोध एवं राष्ट्र गौरव की प्रखरता के सामने साम्राज्यवाद तिनके के समान उड़ने लगा था। स्वतंत्रता पूर्व राजा राम मोहन राय, स्वामी विवेकानंद, बाल गंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, लाला लाजपत राय जैसी विभूतियों के साथ ही साहित्यकारों, समाज सुधारकों एवं राजनेताओं की पूरी टोली थी। नारायण गुरु (1856–1928), कुमारन आशान (1873–1924), रघुपति वेंकट रत्नम नायडु (1862–1939), भीमा भोई (1850–1894), गुरजा वेंकट अप्पाराव (1865–1915), गोपाल गणेश आगरकर (1856–1895) आदि ने भारतवर्ष की सामाजिक पुनर्रचना की मजबूत नींव डाली थी। इसमें अनाम साहित्यकारों व सुधारकों की संख्या अनगिनत थी। भारतेंदु ने "निज भाषा निज देश" के स्वाभिमान को साहित्य के जरिए ललकारा था तो स्वामी विवेकानंद ने "तृणापि सुनीच" (स्वयं को हीन समझने की मनोवृत्ति) पर सीधा आघात कर भारतवासियों के मन में आत्मविश्वास, विवेक और संकल्प का बीज रोपा था।

नवजागरण का नाद

भगिनी निवेदिता को 3 नवंबर 1897 को लिखे पत्र में उन्होंने कहा था, "अत्यधिक भावुकता कार्य में बाधा उत्पन्न करती है, वज्रादपि कठोराणि मृदुनि कुसुमादपि (वज्र से भी कठोर और पुष्प से भी कोमल) हमारा मूलमंत्र होगा।" संक्षेप में हम कह सकते हैं कि राजनीतिक गतिविधियों ने सामाजिक सुधारवाद को हाशिए पर नहीं धकेला था। तभी तो राष्ट्रीय आंदोलन के मध्य में महात्मा गांधी "हरिजन यात्रा" पर निकल पड़े थे। यूरोपनिष्ठ कांग्रेसियों को महात्मा गांधी का यह कदम अटपटा लगा था, परंतु 1933–34 की इस रचनात्मक यात्रा ने राष्ट्र की नींव को किसी भी अन्य कार्यक्रम से अधिक मजबूत किया था। राजा राममोहन राय से लेकर गांधीजी तक, जब–जब हिंदू समाज में नवजागरण की लौ प्रखर हुई तब–तब ईसाइयत व इस्लाम के प्रसारवादियों की छटपटाहट देखने लायक थी। प्रतिक्रियावाद के विरुद्ध लोग खड़े हुए तो नई सुबह का सवेरा और भी स्वस्थ एवं सार्थक था। संवाद व संघर्ष ने हिंदू समाज को कमजोर नहीं होने दिया बल्कि

इसकी आंतरिक शक्ति को बढ़ाने का ही काम किया। इसके दो उदाहरण हैं। ईश्वर चंद्र विद्यासागर ने सती प्रथा के विरोध में कुछ सौ हस्ताक्षर वाला ज्ञापन दिया तो राधाकांत देव ने इसके समर्थन में हजारों हस्ताक्षर वाला ज्ञापन दिया। दोनों ही सभ्यता व संस्कृति के लिए चिंतित थे परंतु एक प्रगति की राह था तो दूसरी जड़ता की। ठीक इसी प्रकार रानाडे व लाला लाजपत राय के प्रश्न व प्रतिप्रश्न बौद्धिकता का दर्शन कराते हैं। रानाडे पूछते थे, "पुनरुद्धार किसका? अंधविश्वासों का, कर्मकांडों का, सती प्रथा का?" तो लाजपत राय उलट कर सवाल करते थे, "अनुकरण किसका? फ्रेंच शराबों का, अंग्रेजी तौर–तरीकों का या अमरीकी स्वेच्छाचारिता का?" हिंदू बुद्धिवाद की एक विशिष्टता रही है कि यह असमझौतावादी विमर्श से मुक्त रहा है अर्थात् आधुनिकता व परंपरा, दोनों ही परस्पर संवाद या संघर्ष में एक–दूसरे से सीखने, समझने व ग्राह्य करने के लिए तत्पर रहे। पश्चिम की संस्कृति असमझौतावादी आधुनिकता की बात करती है। भारत के यूरोपनिष्ठ चिंतक, राजनीतिज्ञ व साहित्यकार इसी के गुलाम हैं। अतः पश्चिम की हर बात, हर दर्शन, हर व्यवहार उनके लिए अनुकरणीय रहा है। इसके विपरीत भारतीयता के अधिष्ठान में रहने वाले लोग समझौतावादी आधुनिकता की बात करते हैं अर्थात् समाज व संस्कृति सापेक्ष ज्ञान व परंपरा, चाहे वह किसी भी दिशा से प्रवाहित हो रही हो, को अपनाने में कोई अपराधबोध नहीं होता है। स्वतंत्रता के पश्चात् जीवन मूल्यों व दर्शनों का संघर्ष व्यक्तिवाद व अहं का शिकार हुआ। यूरोपनिष्ठ नेतृत्व ने पाश्चात्य सोच को समाज व संस्कृति से संदर्भहीनता के बावजूद थोपने का काम किया। इसी का प्रतिरोध सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के द्वारा हो रहा था और हो रहा है।

प्रखर बौद्धिकता

आजादी से पूर्व लाल–बाल–पाल एवं महर्षि अरविंद ने अपनी बौद्धिकता के द्वारा यूरोपीय दर्शन, राजनीतिक सिद्धांत व व्यवहार को सार्थक चुनौती दी थी। वे अखबारी बुद्धिजीवी नहीं थे, अखबार पढ़कर प्रतिक्रियावाद व निषेध में जीने वाले प्राणी नहीं थे, समाचारों को सर्वोच्च व संप्रभु मानने वाले बौद्धिक जीव नहीं थे, जो अखबारों की कीमत, पृष्ठ संख्या और निषेधात्मक समाचारों का मंथन करने में समय बिताते थे। उन्होंने अखबारों को भी दार्शनिक एवं उच्च कोटि की बौद्धिकता प्रदान की थी, चाहे वह "केसरी", "मराठा" हो या "वंदेमातरम"। इसीलिए हिंदू अस्मिता ने सभी विरोधों का सफलतापूर्वक प्रतिरोध किया था। इसी सांस्कृतिक एवं बौद्धिक परंपरा की कल्पना डॉ. केशव बलिराम हेडगेवार ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की स्थापना में की थी। संघ को उन्होंने समाज के बीच उसी की ऊर्जा से परिवर्तन लाने के लिए खड़ा किया था। समय व संदर्भ के अनुकूल संघ उस परिवर्तन में सारथी का काम करेगा, यह एक विजेता का सपना व संकल्प था। इसमें हीनता तो नहीं ही थी, अहं भी नहीं था। संघ को अपने अंतिम समय में उन्होंने लघु हिंदू राष्ट्र के रुप में जब देखा था तो उनके मन का संकल्प संघ का संकल्प था–भारत का हिंदुत्व उसकी राष्ट्रीयता का प्रखर आधार है। इसमें विरासत पर निर्भरता कम थी, भविष्य के प्रति आह्वान अधिक था। इसलिए सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का समय व संदर्भ के अनुकूल विवेचन करना भी इसी वैचारिक आंदोलनों की स्थापित जिम्मेदारी है। इसमें दो प्रमुख तत्त्व हैं–प्रथमतः, भारतीय जीवनमूल्यों एवं दर्शन को पुनर्स्थापित करना और दूसरा, सामाजिक पुनर्रचना का यज्ञ। दोनों ही बातें एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं। उन्हें अलग करके नहीं देखा जा सकता है। सामाजिक पुनर्रचना का तात्पर्य हिंदू समाज को कालबाह्य परंपराओं, कर्मकाण्डों, व्यवस्था व पाखंडी सोच से मुक्त करना है।

जब पुनर्जागरण की प्रक्रिया शुरु होती है तब राष्ट्र का उत्थान होता है, उसकी जमीन मजबूत होती है। इससे भी बड़ी बात है कि सामाजिक विरोधाभासों को अवसर समझने वालों का अस्तित्व मिट जाता है। सामाजिक सुधारवाद व क्रांति को साहित्य, समाजशास्त्र और सुधार आंदोलनों के परस्पर सामंजस्य से आगे बढ़ाया जा सकता है। योजनाएं लोक आचरण एवं संस्कृति को परिष्कृत करने की हों। क्या हम सुनिश्चित कर सकते हैं कि देश का एक भी ऐसा हरिजन परिवार नहीं होगा जो अगले पांच वर्ष में चार में से किसी एक धाम व अयोध्या के राम मंदिर की यात्रा न करे? और इस रास्ते में हिंदू समाज के सबल संसाधन का तो उपयोग हो ही, कर्मकांडी एवं परंपरावादी या प्रतिक्रियावादी ताकतों को संवाद एवं बहिष्कार के द्वारा परास्त भी किया जा सके। सामाजिक समरसता व सांस्कृतिक परिष्कार व्याख्यानों से नहीं, कार्यक्रमों से होता है।

"एकात्मता यात्रा" व "शिला पूजन" जैसे कार्यक्रम इसके जीवंत प्रमाण है। हिंदू समाज को यथास्थितिवाद से बाहर कर इसे रोग मुक्त समाज बनाने की तैयारी ही हिंदू राष्ट्र की सबलता की पूर्व शर्त है। सामाजिक सुधार के मुद्दो पर समाज के भीतर हर स्तर पर व्यापक ध्रुवीकरण अवश्यंभावी है। अतः जब जब सुधारवाद आगे बढ़ा है, हिंदू समाज सशक्त होता गया है। उदाहरण के लिए, दहेज मुक्त समाज की स्थापना और उसके अनुकूल जनजागरण व्यापक बहस, ध्रुवीकरण, संघर्ष व संवाद को आमंत्रित करेगा। हिंदू सामाजिक सांस्कृतिक आंदोलन को मिल रही बाह्य चुनौती का कारण क्या है? पिछले कई दशकों से हिंदू समाज की श्रेष्ठतम प्रतिभा इस आंदोलनात्मक प्रक्रिया के प्रति उदासीन रही है। प्रचार माध्यमों एवं शिक्षा की प्रणाली ने उसे यूरोप आरोपित जीवन दर्शन के करीब पहुंचा दिया है। इसके विपरीत ईसाई व इस्लामी सामाजिक–सांस्कृतिक प्रक्रिया ने अपने बीच की श्रेष्ठतम प्रतिभाओं का उपयोग किया है। यही कारण है कि धर्मांतरण, जिहाद, अलगाववादी मांगों को भी स्वतंत्रता व समानता के नाम पर हिंदू समाज के एक बडे वर्ग का समर्थन मिल जाता है।

पंथनिरपेक्षता से तात्पर्य

अतः जीवन मूल्यों को समाजशास्त्र से लेकर राजनीति तक स्थापित करने में जो जनजागरण होगा उसकी कल्पना से ही तीनों आंतरिक खतरों– वामपंथ, जिहादी इस्लाम व प्रसारवादी ईसाइयत– के रोंगटे खड़े हो जाते है। पंथनिरपेक्षता का एक ऐसा ही प्रश्न है, जिस पर हिंदू दृष्टिकोण की पुनर्स्थापना वर्तमान सांप्रदायिक समस्या का स्थायी समाधान हो सकता है। आज हम ईसाई समाजशास्त्रियों द्वारा परिभाषित व आरोपित पंथनिरपेक्षता के गुलाम हैं। हर पंथ व समाज का दृष्टिकोण उसकी अपनी पंथनिरपेक्षता है। हिंदू पंथनिरपेक्षता की सबसे संक्षिप्त परिभाषा स्वामी विवेकानंद ने दी है, "मत पथ मात्र है।" इस्लाम व ईसाइयत, दोनों की इससे असहमति पंथनिरपेक्षता का निषेध है। अतः इस्लाम व ईसाइयत का भारतीयकरण यहां के सुविचारित दर्शन व आधुनिकता को अपनाने में है। यह आरोपण नहीं आत्मसात् होने की प्रक्रिया है। अतः हिंदू पंथनिरपेक्ष दर्शन की विवेचना, वर्तमान में विश्लेषण आंतरिक खतरों के प्रतिकार के एक बड़े भारी उपकरण के समान है। आचार्य शंकर ने कहा था, "निस्त्रैगुण्ये पभि विचरतां को विधिः को निषेधः।" (तीनों गुणों के अतीत मार्ग पर विचरण करने वाले के लिए विधि क्या और निषेध भी क्या?) विमर्श पुरुषार्थ के साथ, विश्लेषण विवेक के साथ व संवाद मर्यादा के साथ करना ही लाल–बाल–पाल व महर्षि अरविंद की परंपरा थी।

सांस्कृतिक राष्ट्रवादी वैचारिक पक्ष के सामने उसी परंपरा को पुनर्जीवित कर पुष्ट करना सबसे बड़ी चुनौती है। खानापूर्ति वाले बुद्धिवाद से बचना और श्रेष्ठता के आधार पर कदम बढ़ाना विजेता बनने की पूर्व शर्त है। इस पुरानी उक्ति– "वैद्य, तुम पहले अपने आप को चंगा करो" को चरितार्थ करना पड़ेगा। अहं से राष्ट्र व संगठन दोनों का विनाश होता है। डॉ. हेडगेवार ने संघ को संगठन के अहं से मुक्त रखा और संघ की यही विशेषता इसकी संजीवनी है। राष्ट्र का परमवैभव उसकी संपूर्णता में है अर्थात् सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के अंतर्गत अध्यात्म, सामाजिक पुनर्रचना, आर्थिक व राजनीतिक प्रक्रिया, सभी सम्मिलित हैं। एकाकी रूप में न उन्हें देखना उचित है, न उपयोगी है। हमारे प्रतिकार में प्रगतिवाद, परिवर्तनवाद और संवाद का त्रिकोणात्मक स्वरूप है। इसमें अपराधबोध और अहं का कोई स्थान नहीं है।

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय में प्राध्यापक हैं)

जब तक आप खुद पर विश्वास नहीं करते तब तक आप भगवान पर विश्वास नहीं कर सकते।

(स्वामी विवेकानंद)

नवयुग निर्माता भारत

— सुनील आम्बेकर

आजकल दुनिया की बहुत सारी प्रमुख हस्तियां भारत का रुख कर रही हैं। कुछ दिन पूर्व प्रसिद्ध नेटवर्किंग साईट (सामाजिक आंतरदाता माध्यम) फेसबुक के मार्क जुकरबर्ग भारत आए थे। फिर भारत के प्रधानमंत्री से मिलने गुगल के नए कार्यकारी प्रमुख सुंदर पिचई जो कि भारतीय मूल के हैं, आए थे। भारत के नए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी का स्वागत अमेरिका, चीन, जापान, ईरान से लेकर सभी देशों में अभूतपूर्व तरीके से हो रहा है। भारत में छिपी अपार संभावनाओं को शायद दुनिया समझ रही है। भारत के प्रति निराश रहने वाले विदेश स्थित भारतवंशीय लोग भी भारत के विकास के प्रति आशान्वित है, तथा इस परिस्थिति में स्वयं को भारत गौरव के साथ जोड़ रहे हैं।

भारत के इतिहास के पन्नों को जैसे–जैसे खुलने का अवसर प्राप्त हो रहा है, उसके प्रति गौरव बढ़ता जा रहा है। अर्थात् सामने तो वह था जो नकारात्मक था। वह भी कुछ–कुछ मनगढंत। छुपा तो वह है, जो गौरवपूर्ण है। इसलिए दुनिया में जैसे ही लोगों को हमारी "योग" पद्धति के बारे पता चला, उन्होंने उसे खुले मन से पुरी दुनिया में जीवन शैली के रूप में स्वीकार किया। स्वाभाविक ही भारत के युवा भी हमारे इस ज्ञान भंडार के प्रति आकर्षित हुए हैं। इसमें भविष्य की अपार संभावनाएं स्पष्ट हैं–भारत के विकास की।

भारत का संघर्ष भी प्रेरणास्पद है। यह भी शताब्दियों की गाथा है। हमें तो केवल मुगलों, ब्रिटिशों का राज ही पढ़ाया जाता है तथा राष्ट्रीय कांग्रेस एवं महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए स्वाधीनता आंदोलन को बताया जाता है। निश्चित वह सारे स्वाधीनता सेनानी महान् हैं तथा उन्हें पुनः पुनः वंदन है, लेकिन भारत जैसे देश के इतिहास को या गौरव के पन्नों को वहीं तक सिमटकर रखना, यह उसके साथ अन्याय होगा। तथा अध्ययन की दृष्टि से भी अधूरा होगा। स्वातंत्र्य वीर सावरकर ने अपनी पुस्तक, भारतीय इतिहास के "छह स्वर्णिम पृष्ठ" में बहुत ही अनूठे–आकर्षक ढंग से परंतु काफी संक्षिप्त में इसे वर्णित किया है। भगवान् राम के पहले से ही भारत के राष्ट्र के रूप में उभरने की प्रक्रिया में विजिगीषु प्रवृत्ति का दर्शन होता है, जो अच्छाई अर्थात् सद्गुणों–सप्तवृति को स्थापित करने के क्रम में संघर्षरत है। पीढ़ियों के संघर्ष से यह आदर्श स्थापित हुए तथा इस राष्ट्र की रक्षा का संकल्प भी इन्हीं आदर्शों अर्थात् संस्कृति की स्थापना हेतु चलता रहा।

मुगलों एवं क्रिश्चियन चर्च की धर्मांतरण एवं राज्य को कब्जा करने की लहर यूरोप–अरब से लेकर समूचे विश्व में एक तूफान की तरह थी। जहां भी गए वहां की आगमन पूर्व संस्कृतियां प्रायः नष्ट हुई तथा उनका राज स्थापित हुआ। भारत में कई असफल प्रयासों के बाद मुगल राज स्थापित हो पाया। मोहम्मद गोरी, गजनी की कई असफलताओं में भारत की बहुत सारी वीर–गाथाएं छिपी हुई है। देश भर में अपनी संस्कृति रक्षा हेतु–राष्ट्र रक्षा का संघर्ष इतना प्रभावी रहा, जिसमें शस्त्रविहीन प्रजा अपने प्राणों तक न्योछावर करने लगी थी। मुगलों का राज तो स्थापित हुआ किंतु उनकी धर्मांतरण गतिविधियां फीकी पड़ गई। तथा कालातंर में शिवाजी, राजा रणजीत सिंह, जैसे कई सारे महापुरूषों को जन्म दिया, जिन्होंने इस राज्य को भी लगभग समाप्त कर दिया था। दुर्भाग्य से भारत पूरी तरह मुगलों से मुक्ति पाकर मजबूत होने के पूर्व ही पहले से ताक में बैठे ब्रिटिशों के कब्जे में चला गया। यह भी काफी संघर्षमय था, जिसमें कई महापुरूष विशेषकर जनजाति क्षेत्र के वीरों–भगवान् बिरसा मुंडा, गोविंद गुरू आदि को हमारे समक्ष आने से रोक दिया गया। देश के हर कोने से हर जाति–जनजाति तथा समुदायों द्वारा वीरतापूर्वक ब्रिटिश शासन का विरोध हुआ। जिसकी परिणिति ब्रिटिशों के विरुद्ध 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में हुई। इस गौरव गाथा को भी छिपाने का प्रयास ब्रिटिशों ने किया, तथा सावरकरजी द्वारा उसकी 50 वीं वर्षगांठ पर 1907 में लंदन में 'प्रथम स्वाधीनता का संघर्ष' के नाम से लिखित पुस्तक को प्रकाशन पूर्व प्रतिबंधित कर दिया।

ब्रिटिशों के द्वारा हमारी संस्कृति, ज्ञान, परंपरा एवं क्षमताओं के अपप्रचार को स्वामी विवेकानंद के द्वारा करारा जवाब दिया गया। ब्रिटिशों के मैकाले शिक्षा द्वारा प्रचारित भ्रमों को रोकने का वहां जबर्दस्त प्रभाव था, जिसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश शिक्षा प्राप्त एक ऐसी पीढ़ी को जन्म दिया जो भारत के प्रति स्वाभिमान से

ओत–प्रोत होकर स्वाधीनता आंदोलन के नेतृत्व में आ गई। यही समय था जब मुगलों के समय से संतों द्वारा पूरे समाज को आध्यात्म एवं धर्ममूल्यों से जोड़कर स्वधर्म के प्रति गौरव भाव से जुड़कर स्वाधीनता के लिए प्रेरित करने के प्रयासों को ब्रिटिशों के विरुद्ध लड़ने में एक नई आत्मविश्वास की धार प्राप्त हो गई। वास्तव में यही वह ताकत थी जिससे ब्रिटिश सरकार हार गई।

हमारी ज्ञान–परंपरा, संस्कृति तथा समाज व्यवस्थाओं की मान्यताएं काफी प्रभावित हुईं। जिसके परिणामस्वरूप इसमें कुछ दोष, कुप्रथाएं आदि प्रचलित हुए। अस्पृश्यता एवं जातीयता के आधार पर ऊंच–नीच भाव जैसे आधारहीन बातों को शास्त्रों के मनगढ़ंत तर्कों से पुरस्कृत करने का सामाजिक जीवन पर काफी विपरीत, दूरगामी एवं गहरा प्रभाव हुआ। कई पीढ़ियों को इसके परिणाम को भुगतना पड़ा तथा समाज की एकता को भी इससे काफी धक्का लगा। अर्थात् संतों द्वारा इसे दूर करने के सतत् अभियान चले जिससे संत ज्ञानदेव तुकाराम, नारायणगुरू, रविदास, चैतन्य महाप्रभु, गुरू नानकदेव पूरी श्रृंखला खड़ी हो गई। डॉ. आंबेडकर के आधुनिक आंदोलन से हमारे संविधान एवं नई व्यवस्थाओं में ठोस बदलाव हुआ। यह हमारे दोषों से मुक्त होने की भारतीय प्रक्रिया है, जो पश्चिमी या अरबदेशों तथा कम्युनिस्ट के हिंसक आक्रमणों के से काफी भिन्न है। स्वयं को अपनी विजिगीषु वृत्ति से कठोरतापूर्वक सुधारने की प्रक्रिया।

ब्रिटिशों के शासनान्तर्गत घोर अभावों के दिनो में भी गुरूदेव रवींद्रनाथ टैगोर से लेकर कईयों ने अद्‌भुत साहित्य का निर्माण किया। जैसे बोस ने वनस्पतियों में जीव तथा गॉड पार्टीकल को अनुसंधान की दुनिया के सामने लाया। दोनों को नोबेल प्राप्त हुआ। दुनिया मे चलचित्र की तकनीकी आते ही दादासाहेब फालके ने अत्यंत अभावों से जूझकर उसे सीखा तथा व्यक्तिगत लाभ छोड़कर फिर भारत आकर हमारे लिए भारतीय फिल्म जगत की नींव रखी जिसका डंका आज पूरी दुनिया में बज रहा है।

मुगलों–ब्रिटिशों के समय समाज को सक्रिय रखने के उद्देश्य से प्रारंभ सार्वजनिक गणेश उत्सव आज विभिन्न प्रांतो में अलग–अलग पूजा उत्सवों के माध्यमों से हमारे सांस्कृतिक उत्सव बन गए हैं।

आज स्वाधीनता के पश्चात् सच्ची स्वाधीनता के लिए संघर्ष चल रहा है। दूसरों के उपायों की केवल नकल करने के बदले दुनिया के नए–नए ज्ञान, उपायों एवं प्रयोगों से सीखते हुए अपने भारतीय रास्ते को खोजना निरंतर जारी है। हमें निरतंर आगे बढ़ना है, अर्थात् अपने स्वधर्म के साथ यह ललक दिखाना जरूरी है। हमारी महिलाएं भी आधुनिकता के सारे तूफानों को पचाकर जीवन के हर क्षेत्र में सक्रिय हुई हैं। साथ ही परिवार–संस्कृति को भी संजोए रखकर एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत कर रही है। महिलाओं की सुरक्षा–समाधान हेतु पूरे समाज को अपनी उसी विजिगीषु वृत्ति को दर्शाना आवश्यक है। अभी करोड़ों अनुसूचित जाति–जनजाति तथा अन्य सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग को जल्द आगे लाने हेतु भी उसी उत्साह एवं साहस को हमें दिखाना जरूरी है। हमारे सार्वजनिक जीवन की बुराइयां जैसे–भ्रष्टाचार, अनुशासनहीनता, गंदगी, अव्यवस्था के खिलाफ भी घनघोर संघर्ष करने का अब समय आ गया है। मैकाले की आधी अधूरी शिक्षा से भ्रमित तथा कथित विद्वानों द्वारा हर तरफ फैलाए जा रहे अज्ञान एवं भ्रामक अवधारणाओं तथा काल्पनिक भय से भी निर्णायक संघर्ष जरूरी है। हमारा क्या है? योग्य–अयोग्य क्या है? न्यायपूर्ण क्या है? आधुनिक क्या है? ज्ञान क्या है? तर्क व कुतर्क क्या है? यह अपने तरीके से समझकर हमारी युद्ध की रणनीति पूरे राष्ट्र को अर्थात् युवाओं को बनानी होगी। इस हेतु खूब सारे मंथन एवं ठोस एकता की पूर्ण आवश्यकता है।

भारत के माथे पर पुनः सूर्योदय हो रहा है, अब हम इतने विशाल तथा महान् हो जाएं कि सूर्यास्त की संभावना ही समाप्त हो जाए।

!!जय हिंद– जय भारत!!

(लेखक अभाविप के राष्ट्रीय संगठन मंत्री हैं।)

उठो, जागो और तब तक नहीं रुको जब तक लक्ष्य ना प्राप्त हो जाए।

(स्वामी विवेकानंद)

छात्र-युवा ही बनायेंगे समर्थ भारत

—संजय द्विवेदी

भारत इस अर्थ में गौरवशाली है कि वह एक युवा देश है। युवाओं की संख्या के हिसाब से भी, अपने सामर्थ्य और चैतन्य के आधार पर भी। भारत एक ऐसा देश है, जिसके सारे नायक युवा हैं। श्रीराम, श्रीकृष्ण, जगदगुरू शंकराचार्य और आधुनिक युग के नायक विवेकानंद तक। युवा एक चेतना है, जिसमें ऊर्जा बसती है, भरोसा बसता है, विश्वास बसता है, सपने पलते हैं और आकाक्षाएं धड़कती हैं। इसलिए युवा होना भारत को रास आता है। भारत के सारे भगवान् युवा हैं। वे बुजुर्ग नहीं होते। यही चेतना भारत की जीवंतता का आधार है।

आज जबकि दुनिया के तमाम देशों में युवाशक्ति का अभाव दिखता है, भारत का चेहरा उनमें अलग है। छात्र होना सीखना है, तो युवा होना कर्म को पूजा मानकर जुट जाना है। एक सीख है, दूसरा कर्म है। सीखी गई चीज को युवा परिणाम देते हैं। ऐसे में भारत की छात्रशक्ति को सीखने के बेहतर अवसर देना, उनकी प्रतिभा को उन्नयन के लिए नए आकाश देना, हमारे समाज और सरकारों की जिम्मेदारी है। छात्र को ठीक से गढ़ा न जाएगा तो वह एक आदर्श नागरिक कैसे बनेगा। देश के प्रति जिम्मेदारियों का निर्वहन वह कैसे करेगा। भारत के शिक्षा परिसर ही नए भारत के निर्माण की आधारशिला हैं अतः उनका जीवंत होना जरूरी है।

अराजनैतिक छात्रशक्ति का निर्माण :

देश में पूरी तरह से ऐसा वातावरण बनाया जा रहा है जिसमें छात्र सिर्फ अपने बारे में सोचे, कैरियर के बारे में सोचे। उसमें सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों, राष्ट्र के प्रति सद्भाव पैदा हो, इस ओर प्रयास जरूरी है। जरूरी है कि वे देश के बारे में जानें, उसकी विविधताओं और बहुलताओं का सम्मान करें। ऐसे नागरिक बनें जो विश्वमंच पर भारत की प्रतिष्ठा बना सकें। तमाम सामाजिक संगठनों से जुड़कर छात्र–युवाशक्ति तमाम सामाजिक प्रकल्पों को चलाती भी है। किंतु हमारी शिक्षा में ऐसी व्यवस्था नदारद है। आज ऐसा लगता है कि शिक्षा से तो वे जो कुछ प्राप्त करते हैं उससे वे मनुष्य कम मशीन ज्यादा बनते हैं। वे काम के लोग बनते हैं किंतु नागरिक और राष्ट्रीय चेतना से लैस मनुष्य नहीं बन पाते है। छात्रों–युवाओं में राष्ट्रीय चेतना सामान्य व्यक्ति से ज्यादा होती है। इसलिए देश की शिक्षा व्यवस्था में अगर राष्ट्रीय भाव होते तो आज हालात अलग होते। हालात यह हैं कि जो छात्र युवा सामाजिक–सांस्कृतिक संगठनों से न जुड़े हों तो उनकी राष्ट्रीय विषयों पर कोई सोच नहीं होती है, क्योंकि उन्हें इस दिशा में सोचने और काम करने का अवसर ही नहीं मिलता। इस प्रकार हमने छात्र एवं युवाओं को पूरी तरह अराजनैतिक और व्यक्तिगत सोच वाला बना दिया है। आज मुख्यधारा का छात्र–युवा, आनंद और उत्सवों में मस्त है। वह पार्टियों और मस्त माहौल को ही अपना सर्वस्व समझ रहा है। ऐसी स्थितियों में यह जरूरी है कि छात्रों का राजनीतिकरण हो, उन्हें वैचारिक आधार से लैस किया जाए, और देश के प्रश्नों पर वे संवाद करें। आज देश के तमाम परिसरों में छात्रसंघ चुनाव भी नहीं कराए जाते। आखिर एक लोकतांत्रिक देश में छात्रों के राजनीतिकरण से किसे डर लगता है। सच तो यह है कि सत्ताएं चाहती हैं कि युवा मस्त–मस्त जीवन जीते रहें, और समाज में खड़े प्रश्नों से न टकराएं। वे पार्टियों में झूमते रहें और मनोरंजन ही उनका आधार बने। मनोरंजन और कैरियर से आगे सोचने वाली युवाशक्ति का अभाव सबसे बड़ी चुनौती है।

शिक्षा परिसरों को जीवंत बनाने की जरूरत :

आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा परिसरों को ज्यादा जीवंत और ज्यादा प्रासंगिक बनाया जाए। परिसरों को सांस्कृतिक, राजनीतिक और सामाजिक प्रश्नों पर प्रशिक्षण का केंद्र बनाया जाए। अगर परिसर जीवंत

होंगे तो नया समाज भी जीवंत बनेगा। भारतीय परंपरा में संवाद और विवाद की अनंत धाराएं रही हैं। यह समाज संवादित समाज है। जिन दिनों संचार के साधन उतने नहीं थे तो भी समाज उतना ही संवादित था। कुंभ से लेकर अनेक मेलों में समाज संवाद करता था। नए समय ने समाज के संवाद के अनेक मार्ग बंद कर दिए हैं। सामयिक प्रश्नों पर संवाद कम होने के कारण नई पीढ़ी को देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक चुनौतियों से रू–ब–रू होने का अवसर ही नहीं मिलता। इसलिए देश के युवा आज अपने समय की चुनौतियों को नहीं पहचान पा रहे हैं। मुख्यधारा के युवाओं को एक ऐसा युवा बनाया जा रहा है जो कैरियर और मनोरंजन से आगे न सोच सके। इस प्रकार सामाजिक सोच का विकास बाधित हो रहा है।

छात्र संगठन निभाएं जिम्मेदारी :

छात्र संगठनों की यह जिम्मेदारी है कि राजनीतिक दलों के पिछलग्गू बनने के बजाए अपने दायरे से बाहर आएं। शिक्षा और शिक्षक जहां साथ छोड़ रहे हैं, छात्र संगठनों को वहीं छात्रों का साथ पकड़ना होगा। छात्र संघों को छात्रों की सर्वांगीण प्रतिभा के उन्नयन का मार्ग प्रशस्त करना होगा। छात्र संघ अपनी भूमिका का विस्तार करते हुए सिर्फ छात्र समस्याओं और राजनीतिक कामों के बजाए देश के सवालों पर सोचने और उन पर विमर्श का कार्य भी करे। छात्रशक्ति की सक्रिय भागीदारी से देश में आमूल चूल परिवर्तन आ सकता है। एक मिशन और ध्येय पैदा होते ही छात्र एक ऐसी युवाशक्ति में परिवर्तित हो जाता है, जिससे देश का सर्वांगीण विकास सुनिश्चित होता है। देश के सब क्षेत्रों में आंदोलन कमजोर हुए हैं। आंदोलनों के कमजोर होने के कारण विविध क्षेत्रों की वास्तविक आवाजें सुनाई देनी बंद हो गई है। इसके चलते सत्ता का अतिरेक और आत्मविश्वास बढ़ रहा है। जनसंगठन और छात्र संगठन एक सामाजिक दंडशक्ति के रूप में काम करें, इसके लिए उन्हें सचेतन प्रयास करने होंगे। इससे सत्ता और प्रशासन को भी सामाजिक शक्ति का विचार करना पड़ता है। एक लोकतंत्र में नागरिकों की सक्रिय भागीदारी ही उसे सफल और सार्थक बनाती है। अगर नागरिक जागरूक नहीं होते तो उनको उसके परिणाम भोगने पड़ते हैं। एक सोया हुआ समाज कभी भी न्याय प्राप्ति की उम्मीद नहीं कर सकता। एक जागृत समाज ही अपने हितों की रक्षा करता हुआ अपने राष्ट्र की प्रगति में योगदान देता है। अगर छात्रों में छात्र जीवन से ही यह मूल्य स्थापित कर दिए जाएं तो वे आगे चलकर एक सक्रिय नागरिक बनेंगे, इसमें दो राय नहीं है। उन्हें अपनी जड़ों से प्रेम होगा, अपनी संस्कृति से प्रेम होगा, अपने समाज और उसके लोगों से प्यार होगा। वह नफरत नहीं कर पाएगा कभी किसी से। क्योंकि उसके मन में राष्ट्रीय भावना का प्रवेश हो चुका होगा। वह राष्ट्र को सर्वोपरि मानेगा, राष्ट्र के नागरिकों को अपना भाई–बंधु मानेगा। वह जानेगा कि उसके कार्य का क्या परिणाम है। उसे पता होगा कि देश के समक्ष उपस्थित चुनौतियों का सामना उसे कैसे करना है। देश के छात्र संगठन अपनी–अपनी विचारधाराओं और राजनीतिक धाराओं को मजबूत करते हुए भी 'राष्ट्र प्रथम' यह भाव अपने संपर्क में आने वाले युवाओं में भर सकते हैं। सही मायने में यही युवा आगे चलकर समर्थ भारत बनाएंगे।

(लेखक माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय, भोपाल में जनसंचार विभाग के अध्यक्ष हैं)

तुम्हें अंदर से बाहर की तरफ विकसित होना है। कोई तुम्हें पढ़ा नहीं सकता, कोई तुम्हें आध्यात्मिक नहीं बना सकता। तुम्हारी आत्मा के अलावा कोई और गुरु नहीं है।

(स्वामी विवेकानंद)

ओएनजीसी
ONGC

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

OPENING NEW PARADIGMS EXPLORING DEEPER PLAYS

Induction of FPSO units to boost deep-water operations

A state-of-the-art rig mounted platform RS-12 for expeditious production

Crude oil production of 22.264 MMT- at **7 year high**

Reserve Replacement Ratio **(RRR)** of 1.38 amongst the **best in the world**

22 new discoveries during **FY 14-15** against 14 in FY 13-14

Only Indian Energy Company in **'FORTUNE** - World's Most Admired Companies - 2014' list

Ranked No.3 Globally by **Platts** amongst E&P Companies

Ranked No.18 globally among Oil & Gas operations by **Forbes** Global 2000 list-2015

COURAGE TO EXPLORE | KNOWLEDGE TO EXCEED | TECHNOLOGY TO EXCEL

Oil and Natural Gas Corporation Limited (ONGC)

CIN No. L74899DL1993GOI054155

Regd. Office: Jeevan Bharti, Tower-II, 124-Indira Chowk, New Delhi – 110001

Tel: +91 11 23310156 Fax: +91 11 23316413 Web: www.ongcindia.com | /ONGCLimited | @ONGC_

ONGC Group of Companies

Subsidiaries

Joint Ventures

अद्भुत भारत

– राजेश कटियार

सनातन भारत की संस्कृति संस्कारों पर आधारित है और उनमें नाम भी एक संस्कार है। इस परंपरा में नाम का अपना एक खास महत्त्व होता है। अपनी इस यात्रा से उसका अपना एक विलक्षण इतिहास बनता है जिसे उसके अस्तित्व की कसौटी पर कसा जाता है। इस लिहाज से भारत का नाम और उसका इतिहास भी खास है जो उसको अद्भुत बनाता है। भारत दो शब्दों से मिलकर बना है– भारत, जिसमें भा का अर्थ है प्रकाश और रत का अर्थ है प्रकाश में रमा हुआ। प्रकाश में अनवरत् रत या लीन यानी भारत। अद्भुत भारत। इसका सीधा अर्थ है कि प्रकाश में सदा ही लीन रहने वाला भारत ही बाकी दुनिया को भी प्रकाशित कर सकता है। इसी लिए प्रार्थना व संकल्प से निकले प्रकाश में रमे भारत को विश्वगुरू कहना कोई अतिश्योक्ति नहीं है। नई बात नहीं है। गुरू का महती कार्य ही ज्ञानरूपी पुंज से सबको प्रकाशित करना है। कोई भेदभाव नहीं करना। इसीलिए उदारता और सहिष्णुता से ओत–प्रोत भारत ने ही सबसे पहले वसुधैव कुटुंबकम यानी विश्व एक परिवार है, का मंत्र दिया था–

अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुंबकम।।

(यह मेरा है, यह पराया है, ऐसे विचार तुच्छ या निम्न कोटि के व्यक्ति करते हैं। उच्च चरित्र वाले व्यक्ति समस्त संसार को ही कुटुंब मानते हैं। वसुधैव कुटुंबकम का मन विश्वबंधुत्व की शिक्षा देता है।)

यह भी एक विचित्र योग है कि प्रकाश में रत यानी भारत, तो इस देश की सांस्कृतिक राजधानी व दुनिया की सबसे प्राचीन जीवंत नगरी काशी का अर्थ भी प्रकाश ही होता है जो दुनिया के लिए भारत का साक्षात् प्रतीक है। कहा जा सकता है कि भारत को आध्यात्मिक रूप से प्रकाशवान बनाए रखने में बाबा विश्वनाथ की यह रहस्यमयी नगरी सबसे अप्रतिम भूमिका अदा करती है जो मंत्र, तंत्र और यंत्र साधना का संगम है। उत्तर भारत मंत्र, पूर्वी भारत तंत्र और दक्षिण भारत अपनी यंत्रसाधना के कारण जाना–पहचाना जाता है और इन तीनों का संगम काशी है जो सभी दिशाओं को प्रकाशित करती है जिसके उत्तर में हिमालय, दक्षिण में समुद्र, पूर्व में जंगल तो पश्चिम में राजस्थान का रेगिस्तान हरेक प्रकार की भौगोलिक विविधता का विशिष्ट दर्शन होता है।

अपनी इस महती सनातनता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए सबसे जरूरी कारक यह है कि भारत अपने को देशकाल की परिस्थिति के अनुरूप सदा ही कसौटी पर कसता रहा है, न कि वह किसी एक खूंटे से बंधा रहा। इस मामले में भारत कोई सामान्य देश भी नहीं है। यह ईश्वर की एक साक्षात् प्रयोगभूमि है जहां दुनिया के हरेक मौसम और हरेक प्रकार की विविधता और संभावना का दर्शन किया जा सकता है। महर्षि अरविंद कहते थे कि भारत ईश्वर की साक्षात प्रयोगभूमि है जो उसे बाकी दुनिया से अलग करती है और अद्भुत भी बनाती है। इतना ही नहीं यह भारत ही है जो किसी एक ईश्वर से बंधा नहीं है और समय–समय पर अवतारों ने उसको नया रास्ता दिखाया है। नया जीवन दिया है ताकि उसकी निरंतरता, सनातनता और अक्षुण्णता बनी रहे। दिलचस्प है कि यह पवित्र भूमि काल के अनुसार अवतारों को भी समय की कसौटी पर कसती रही है। इसे ए.एल. बाशम की पुस्तक 'द वंडर दैट वाज इंडिया' प्रकाशन 1954 के एक उदाहरण से आसानी से समझा जा सकता है। विष्णु के अवतार माने जाने वाले राम की पांचवीं सदी तक कोई खास पहचान या प्रतिष्ठा इस देश में नहीं थी, बल्कि वासुदेव यानी कृष्ण की प्रतिष्ठा उनसे कहीं ज्यादा थी। मर्यादा पुरुषोत्तम राम की अयोध्या के राजा के रूप में ही स्वीकार्यता थी। कालचक्र देखिए कि इस देश में मुसलमानों के आगमन और उनके आक्रमण के साथ–साथ राम की प्रतिष्ठा बढ़ती चली गई और आज उनकी गिनती सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देवता के रूप में की जाती है। उनकी पुस्तक के प्रकाशन वर्ष का जिक्र इसलिए किया है ताकि सनद रहे कि अयोध्या आंदोलन के करीब 45 साल पहले यह लिखी गई थी।

खैर, यह भारतीय परंपरा की ही अपनी महिमा है कि पांचवी सदी के करीब एक हजार साल बाद राम को समर्पित महान् संत तुलसीदास की रचना रामचरितमानस घर–घर पहुंचकर देश के मानस पटल पर छा जाती है। इस संत ने भगवान् राम को घर–घर पहुंचाकर उनको प्रतिष्ठित कर दिया। यह भी एक अद्भुत योग है कि उनके करीब पांच सौ साल बाद राम की अयोध्या ने देश की राजनीति का चक्र भी घुमा दिया जिसके प्रभाव से आज दुनिया भी अछूती नहीं है। इसलिए भारत को सतही धरातल से नहीं समझा जा सकता है। शिव को छोड़कर बाकी अवतार और देवताओं की प्रतिष्ठा समय के अनुसार बदलती रही है। तीन प्रमुख देवता राम, कृष्ण और शिव पर समग्रता से विचार करते हुए समाजवादी चिंतक डॉ. राममनोहर लोहिया की यह बात याद रखनी चाहिए जिन्होंने कहा था कि राम इस देश के कर्म, कृष्ण इस देश के हृदय और शिव इस महान भारत के मष्तिष्क हैं। मंत्र, यंत्र और तंत्र की त्रयी, राम, कृष्ण और शिव की त्रयी और इन दोनों परंरपराओं का श्री यानी शक्ति से मिलन की त्रयी ही भारत का सार है जो उसको अद्भुत बनाती है। प्रकाशित करती है और उसका विश्व में एक अनोखा स्थान बनाती है।

दैवीय प्रयोग के साथ–साथ सनातन मूल्यों और समय के साथ–साथ उनके साथ प्रयोग करने के साहस ने भारत को सहिष्णु और उदार बनाया है। लचीला बनाया है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी। क्रांतिकारी जीवन छोड़कर अरविंद घोष जब साधना के पथ पर चले, तो उनके कुछेक साथियों ने सवाल खड़ा किया कि साथियों के बम, बारूद का प्रशिक्षण देने के बाद खुद उस पथ को छोड़कर साधना पथ पर चलने का आशय क्या है, अरविंद ने सहज जवाब दिया कि हरेक देश, समाज और व्यक्ति की अपनी एक अलग यात्रा भी होती है, उनके अपने शब्दों में 'भारत के रक्त में साधना है, क्रांति नहीं।' भारत की इस अप्रतिम सनातन साधना को महात्मा गांधी ने बहुत पहले ही पहचान लिया था जिसके बल पर उन्होंने समूचे देश के मानस में एक अनोखा स्थान बना लिया और आजादी की धुरी बने और राष्ट्रपिता कहलाए जिनके लिए महान वैज्ञानिक आइंसटीन ने कहा कि आने वाली शताब्दियों में शायद ही कोई विश्वास करे कि गांधी नाम का कोई व्यक्ति कभी इस धरती पर चलता होगा। साधना पथ पर चलकर अरविंद घोष खुद महर्षि अरविंद बन जाते हैं। इस पर भी विचार किया जाना चाहिए कि आज भारत के पूर्वी तटों में कन्याकुमारी की पहचान स्वामी विवेकानंद, पुडुचेरी की महर्षि अरविंद और कोलकाता में दक्षिणेश्वर की पहचान रामकृष्ण परमहंस से और इन त्रयी का देश को जगाने और आध्यात्मिक ऊर्जा से प्रकाशित करने में महानतम योगदान रहा है।

भारत की संस्कृति व अध्यात्म केवल इस देश तक ही सीमित नहीं रहा है। समूची दक्षिण–पूर्व एशिया की संस्कृति की धुरी अपना भारत ही रहा है। पांचवीं शताब्दी तक आधी दुनिया बौद्ध धर्म के प्रभाव में आ चुकी थी। चीन, कोरिया जापान और तिब्बत की सभ्यताओं के निर्माण में भारत को योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। कंबोडिया में अंगकोर के शैव मंदिर भारतीय संस्कृति के विस्तार की कहानी पर ही मुहर लगाने के लिए पर्याप्त हैं। यह कहने में हमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए जैसा कि इतिहासकार बाशम कहते हैं कि यूरोप और अमेरिका की समसामायिक दार्शनिक विचारधाराएं किसी न किसी रूप में प्राचीन भारत की ऋणी हैं। वे ऋषि जिन्होंने ईसा से 600 या और भी अधिक वर्ष पूर्व गंगा की घाटियों में तपस्या की थी, अब भी विश्व में शक्ति संपन्न हैं। उनका कहना समयोचित है क्योंकि यह भारत ही जिसने यह मंत्र रचने का साहस किया कि–

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत।।

मार्कण्डेय पुराण में सभी प्राणियों के कल्याण की बात की गई है। सभी प्राणी प्रसन्न रहें। किसी भी प्राणी को कोई व्याधि या मानसिक व्यथा न हो। सभी कर्मों से सिद्ध हों। सभी प्राणियों को अपना तथा अपने पुत्रों के हित के समान बर्ताव करें।

इस मंत्र से स्पष्ट है कि दुनिया को आध्यात्मिक, सहिष्णुता और उदारता का प्रकाश अद्भुत भारत ही दे सकता है क्योंकि उसके मूल पिण्ड में सबके कल्याण की कामना है।

(लेखक राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा मिशन, केंद्रीय जलसंसाधन, नदी विकास एवं गंगा संरक्षण मंत्रालय, भारत सरकार में वरिष्ठ परामर्शदाता हैं)

सामर्थ्य की विजिगीषु वृत्ति

—डॉ. जयप्रकाश सिंह

जो सहज उपलब्ध है, उसमें विस्तार की सतत् इच्छा ही विजिगीषु वृत्ति है। यह वृत्ति भारतीय राजनीतिक चिंतन का केंद्रीय तत्व रही है। राजनीतिक दर्शन हो, प्रक्रिया हो अथवा नीतियां, सभी इस वृत्ति के चहुंओर चक्कर लगाती हैं। यदि किसी राजा अथवा राज्य में विजिगीषु वृत्ति नहीं है, विस्तार की इच्छा नहीं है, तो उसकी योग्यता को शून्य और उसकी अवनति को स्वाभाविक मान लिया जाता था। ऐसे राजा अथवा राज्य, राजनीतिक चिंतन की परिधि से बाहर थे। संभवत: इसी कारण विजिगीषु वृत्ति से विहीन हो चुके राजाओं की उबारने वाली किसी नीति का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलता और न ही उनके वक्तव्यों के बारे में कोई संकेत मिलते हैं।

बहुत स्पष्ट है कि राजकर्म से संबंधित किसी व्यक्ति में विजिगीषु वृत्ति का न होना अयोग्यता का परिचायक मात्र नहीं बल्कि यह अधार्मिक होने जैसा था। यह इतनी अधम स्थिति मानी जाती थी कि उसके बारे में कर्तव्य–अकर्तव्य की स्थिति का विचार ही नहीं किया गया। ऐसा प्रतीत होता है कि परंपरागत राजनीतिक चिंतन में विजिगीषु वृत्ति राजनीति की पूर्व शर्त तथा मूलभूत विशेषता थी। नीति, कार्यक्रम, विचार और कर्तव्य का पूरा राजमहल इसी वृत्ति पर खड़ा होता है। शांतिपर्व में राजनीति की महत्ता की बात हो अथवा चाणक्य द्वारा प्रतिपादित मंडल सिद्धांत, शुक्राचार्य जैसे आदि आचार्यों द्वारा प्रतिपादित षड्गुण नीति हो अथवा विभिन्न राजर्षियों द्वारा आदर्श राजा की आदर्श दिनचर्या का प्रतिपादन, सबके आधार में विजिगीषु वृत्ति ही कार्य कर रही है।

इसे न केवल भारतीय राजनीतिक चिंतन, बल्कि भारतीय भूमि और संस्कृति का भी दुर्भाग्य ही माना जाएगा कि इस वृत्ति को बाद में न केवल उपेक्षणीय बना दिया गया बल्कि हेय दृष्टि से देखा जाने लगा। आज भी कुछ लोग सीना ठोंककर यह बताते हैं कि देखो जी, हम लोग कितने उदात्त थे, आक्रांता आते रहे, जुल्म ढाते रहे, मूल्य ढहते रहे लेकिन हम सहिष्णु बने रहे। हमने कभी हिंसा को नहीं अपनाया।

ऐसे कथन न केवल भ्रामक समझ पर आधारित हैं बल्कि यह विजिगीषु वृत्ति को अपना प्राणतत्व मानने वाली महान चिंतन परंपरा का अपमान भी है। हां, यहां पर यह बात समझने योग्य है कि भारत में विजय की एक उदात्त और विशिष्ट परंपरा रही है, इसलिए अपने विस्तार तथा मूल्यों की स्थापना के लिए होने वाले युद्ध का प्रभाव सैनिकों और राजाओं तक ही सीमित होता था। आम आदमी ऐसे युद्धों से अछूता रहता था। इसके साथ ही इस परंपरा में विजय को कुछ आदर्श मूल्यों को बचाने और स्थापित करने की प्रक्रिया के साथ भी जोड़ा गया।

विजय की इस विशिष्ट भारतीय परंपरा को 'उत्खात प्रतिरोपण' कहा जाता था। जैसे कुछ पौधों को उखाड़कर, उसे फिर से उसी जमीन पर रोप दिया जाता है। इस प्रक्रिया में पौधे की मृत्यु नहीं होती बल्कि वह एक खर–पतवार से विकसित होकर वृक्ष बन जाता है। ठीक इसी प्रकार भारतीय विजेता, पराजित राजा का उच्छेदन नहीं करते थे बल्कि पराजय और कुछ शर्तों को स्वीकार कर लेने के बाद उन्हें उनका राज्य वापस लौटा दिया जाता था और फिर से राजपद पर अभिषिक्त कर दिया जाता था। इस तरह विजेता के प्रभाव में वृद्धि भी होती थी और ढीठ शासकों को सीमा में रहने का सबक भी मिल जाता था। पराजित के अस्तित्व को तभी समाप्त किया जाता, जब वह पराजित होने के बाद भी युद्ध का आकांक्षी बना रहता था।

भूमिकाओं के विस्तार और सीमित होने की इस प्रक्रिया से आम जनता इससे अछूती ही रहती और उसके क्रियाकलापों पर इस तरह की जय–पराजय का खासा असर नहीं पड़ता। सिकंदर के सैनिकों ने अपने विजय अभियान में जब निहत्थे किसानों तक को मौत के घाट उतार दिया था तो यह भारतीयों के लिए एक नई घटना थी और इसके कारण भारतीय जनमानस उस बहुत उद्वेलित भी हुआ।

'उत्खात प्रतिरोपण' की प्रकिया में विजय और विजिगीषु वृत्ति के कई रहस्य छिपे हुए हैं। इसमें विस्तार की इच्छा है, मूल्यों को स्थापित करने की प्रेरणा है, लेकिन यह प्रक्रिया विस्तार और विजय को नरभक्षी बनाने से रोकती है और स्थानीय तत्त्वों के महत्त्व को राजनीतिक प्रक्रिया में रेखांकित करती है।

विजिगीषु वृत्ति बहुत नैसर्गिक प्रवृत्ति है। यह हेनरी किसिंजर जैसे आधुनिक कूटनयिकों की इस बात से साम्यता और सहमति रखती है कि पूर्ण शांति इस दुनिया की स्वाभाविक अवस्था नहीं है। पराधीन करना और विजेता बनना बहुत ही स्वाभाविक इच्छाएं हैं और इनका पूर्ण निषेध नहीं हो सकता। यदि इनका निषेध किया जाता है और अपने विस्तार में विश्वास नहीं किया जाता तो दूसरों के विस्तार का शिकार बनना तय है।

दूसरी तरफ यह भी एक स्थापित तथ्य है कि यदि विजेता बनने की इच्छा को बेलगाम छोड़ दिया जाए तो यह रक्तपात और अन्याय का सबसे बड़ा कारण बनती है। यह वृत्ति, न तो व्यक्तित्व को उदात्त बनने देती है और न ही संपूर्ण। ऐसे में यह आवश्यक हो जाता है कि विजिगीषु वृत्ति के साथ उदात्त मूल्यों को संबंधित किया जाए और दोनों में संतुलन स्थापित किया जाए।

भारत में विजिगीषु वृत्ति और उदात्त मूल्यों के बीच संतुलन स्थापित करने वाले सूत्रों को न केवल खोजा गया बल्कि व्यावहारिक धरातल पर इन सूत्रों के जरिए लंबे समय तक संतुलन साधा भी गया। इसके कारण एक तरफ राजनीति को समाज में उच्च प्रतिष्ठा और स्थान मिला, वहीं दूसरी तरफ राजनीति देश की संस्कृति और भूमि को संरक्षित और संवर्द्धित भी करती रही। लेकिन बाद में इसी भूमि पर पैदा होने वाले विभिन्न संप्रदायों के कारण, जिनका जोर शांति, अहिंसा और स्वीकार्यता पर अधिक था, यह संतुलन टूटा। विजिगीषु वृत्ति के जरिए अपने योगक्षेम की प्रक्रिया को गैर–आध्यात्मिक और घोर सांसारिक कृत्यों की श्रेणी में रख दिया गया, जो कि प्राथमिकताओं की उपेक्षित और हेय श्रेणी थी।

विजिगीषु वृत्ति को नेपथ्य में धकेले जाने की प्रक्रिया के कारण एक भूगोल और एक भाव के रूप में भारत को बहुत नुकसान उठाना पड़ा। इस वृत्ति से युक्त व्यक्ति और समाज अपने अगल–बगल होने वाली घटनाओं के प्रति सजग रहता है और अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभावों–दुष्प्रभावों का आकलन कर 'प्रोएक्टिव' कदम उठाता है। इसके कारण संभावित खतरों को दरवाजे पर पहुंचने से पहले ही समाप्त कर देता है। यदि खतरा अधिक प्रबल होने की स्थिति में दरवाजे तक पहुंच ही जाता है तो भी विजिगीषु वृत्ति से लैस व्यक्ति के पास संभावित खतरे की पूर्व जानकारी होने के कारण इतना समय होता है कि वह उचित रणनीति बनाकर खतरे को जमींदोज कर सके।

विजिगीषु वृत्ति से विहीन व्यक्ति, समाज अथवा राष्ट्र अगल–बगल हो रही घटनाओं के प्रति निहायत ही

लापरवाह हो जाता है और अपने 'कंफर्ट जोन' में ही सिमटा रहता है। ऐसी स्थिति में खतरा, जो बहुत पहले ही जन्म ले चुका होता है, उसके सामने यकायक प्रकट होता है। इस खतरे से निपटने के उसके पास आजमाने को बहुत सीमित और अनियोजित विकल्प रहते हैं। या तो वह खतरे को सांसारिक घोषित कर भाग जाता है अथवा उद्वेग में आकर लड़ाई करता है, जिसमें उसका पराजित होना तय होता है।

भारत के सामूहिक अवचेतन मन से विजिगीषु वृत्ति को खुरच-खुरचकर मिटा दिया गया। इसका नाम लेना भी कुफ्र घोषित कर दिया गया। इसके कारण हम आक्रांत होते रहे। इस्लाम की मूल मान्यताओं के बारे में आज भी अनभिज्ञ हैं, ईसाइयत की विश्व-दृष्टि क्या है, इसके बारे में हम ठीक ढंग से नहीं जानते और सभी धर्म एक समान हैं, इसकी रट लगाए रहते हैं। ऐसा नहीं है कि यह पूर्व में की गई गलतियां हैं। यह चलन आज भी बना हुआ है। हम आज भी बिना तुलनात्मक और विश्लेषणात्मक अध्ययन के यह मान लेते हैं कि जैसा हम मानते हैं, वैसे ही दूसरे हैं। जब वह दूसरे हमारी मान्यता के विपरीत अपने रूप में हमारे सामने आते हैं तो हम छाती पीटने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर पाते।

आज भी आईएसआईएस की 'खिलाफत' की प्रेरणा अथवा 'गजवा-ए-हिंद' की संकल्पना के बारे में भारतीयों में बौद्धिक अथवा रणनीतिक स्तर पर कोई उद्वेलन देखने को नहीं मिलता तो इसका कारण यही है कि हममें विजिगीषु वृत्ति का पूर्ण अभाव है। स्वविस्तार और स्वसंरक्षण की भावना रहने पर पैदा हो रहे प्रत्येक खतरे का आकलन एक स्वाभाविक प्रक्रिया के रूप में किया जाता है। इस वृत्ति के अभाव में हम खुद कुछ सुविधाजनक निष्कर्ष निकाल लेते हैं और उसी की पट्टी अपने आंखों पर बांध लेते हैं।

परिवेश के प्रति सजगता, विजिगीषु वृत्ति की सबसे बड़ी देन है। यही सजगता न केवल हमारे सामर्थ्य को बनाए रखती है, बल्कि सामर्थ्य को बढ़ाती भी है। इसलिए राष्ट्र के परवैभव की कामना करने वाले प्रत्येक व्यक्ति का यह प्राथमिक कर्तव्य है कि वह राष्ट्र के सामूहिक अवचेतन में विजिगीषु वृत्ति को प्रतिष्ठित करने का यत्न करे। यह वृत्ति अन्य आवश्यक उपायों और वृत्तियों को स्वयं पैदा कर लेगी।

(लेखक 'दिव्य हिमाचल' समाचार पत्र के फीचर संपादक हैं।)

किसी दिन जब आपके सामने कोई समस्या ना आए – आप सुनिश्चित हो सकते हैं कि आप गलत मार्ग पर चल रहे हैं।

(स्वामी विवेकानंद)

ਪੰਜਾਬ ਸਰਕਾਰ
ਵਣ ਅਤੇ ਜੰਗਲੀ ਜੀਵ ਸੁਰੱਖਿਆ ਵਿਭਾਗ

ਕਿਸਾਨ ਭਰਾਵਾਂ ਲਈ ਖ਼ੁਸ਼ਖ਼ਬਰੀ

"ਪਾਪਲਰ ਲਗਾਓ, ਵਧੇਰੇ ਧਨ ਕਮਾਓ"

ਕਿਸਾਨ ਭਰਾਵਾਂ ਨੂੰ ਇਹ ਜਾਣ ਕੇ ਬੜੀ ਖ਼ੁਸ਼ੀ ਹੋਵੇਗੀ ਕਿ ਵਣ ਵਿਭਾਗ ਵੱਲੋਂ ਖੇਤੀ ਵਿਭਿੰਨਤਾ (ਡਗਰਬ ਦਜਡਕਗਤਜਜਿਫ਼ਵਜਰਅ) ਪ੍ਰਾਜੈਕਟ ਤਹਿਤ ਵਧੀਆ ਕਿਸਮ ਦੇ ਕਲੋਨਲ ਪਾਪਲਰ ਦੇ ਬੂਟੇ ਕਿਸਾਨਾਂ ਨੂੰ ਮੁਫ਼ਤ ਸਪਲਾਈ ਕੀਤੇ ਜਾਣ ਦੀ ਸਕੀਮ ਸਾਲ 2013-14 ਵਿੱਚ ਸ਼ੁਰੂ ਕੀਤੀ ਗਈ ਸੀ। ਪਾਪਲਰ ਬਿਸਤ, ਦੁਆਬਾ ਅਤੇ ਮਾਝਾ ਇਲਾਕਿਆਂ ਵਿੱਚ ਲਗਾਉਣਾ ਯੋਗ ਹੈ ਜਾਂ ਜਿੱਥੇ ਸਿੰਚਾਈ ਦੇ ਚੰਗੇ ਸਾਧਨ ਉਪਲਬਧ ਹੋਣ। ਤੇਜ਼ ਵਾਧਾ, ਸਿੱਧਾ ਤਣਾ ਅਤੇ ਬਹੁਉਪਯੋਗੀ ਲੱਕੜ ਦੀ ਲਗਾਉਣਾ ਯੋਗ ਹੈ ਜਾਂ ਜਿੱਥੇ ਸਿੰਚਾਈ ਦੇ ਚੰਗੇ ਸਾਧਨ ਉਪਲਬਧ ਹੋਣ। ਤੇਜ਼ ਵਾਧਾ, ਸਿੱਧਾ ਤਣਾ ਅਤੇ ਬਹੁਉਪਯੋਗੀ ਲੱਕੜ ਦੀ ਵਰਤੋਂ ਕਰਕੇ ਪਾਪਲਰ ਆਧਾਰਤ ਵਣ ਖੇਤੀ ਆਮ ਖੇਤੀਬਾੜੀ ਦੇ ਮੁਕਾਬਲੇ ਲਾਭਕਾਰੀ ਹੈ। ਪਾਪਲਰ ਦੇ ਬੂਟੇ ਤਕਰੀਬਨ 5 ਤੋਂ 6 ਸਾਲਾਂ ਦੇ ਸਮੇਂ ਵਿੱਚ ਹੀ ਕੱਟਣ ਲਈ ਤਿਆਰ ਹੋ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਸਿਆਲ ਵਿਚ ਇਸ ਦੇ ਪੱਤੇ ਝੜਨ ਕਰਕੇ ਇਸ ਦੇ ਨਾਲ ਹਾੜ੍ਹੀ ਦੀ ਫ਼ਸਲ ਵੀ ਲਈ ਜਾ ਸਕਦੀ ਹੈ।

ਇਸ ਸਕੀਮ ਦੀਆਂ ਹੇਠ ਲਿਖੀਆਂ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ਤਾਵਾਂ ਹਨ:-

1. ਇਹ ਸਕੀਮ ਪੰਜਾਬ ਦੇ ਸਾਰੇ ਜ਼ਿਲ੍ਹਿਆਂ ਵਿੱਚ ਲਾਗੂ ਹੋਵੇਗੀ।
2. ਇਸ ਸਕੀਮ ਤਹਿਤ ਪਾਪਲਰ ਦੇ ਲੰਬੇ ਬੂਟੇ *ਪਹਿਲਾਂ ਆਓ ਅਤੇ ਪਹਿਲਾਂ ਪਾਓ* ਦੇ ਆਧਾਰ ਤੇ ਦਿੱਤੇ ਜਾਣਗੇ। ਇਸ ਲਈ ਕਿਸਾਨ ਭਰਾਵਾਂ ਨੂੰ ਬੇਨਤੀ ਹੈ ਕਿ ਆਪਣੀ-ਆਪਣੀ ਜ਼ਰੂਰਤ ਅਨੁਸਾਰ ਜਲਦੀ ਤੋਂ ਜਲਦੀ ਪਾਪਲਰ ਦੇ ਲੰਬੇ ਬੂਟਿਆਂ ਦੀ ਮੰਗ ਆਪਣੇ ਨੇੜੇ ਦੇ ਵਣ ਮੰਡਲ ਅਫ਼ਸਰ/ਵਣ ਰੇਂਜ ਅਫ਼ਸਰ ਕੋਲ ਬੁੱਕ ਕਰਵਾ ਲੈਣ।
3. ਪਾਪਲਰ ਦੇ ਪੌਦੇ ਕੇਵਲ ਜਨਵਰੀ-ਫ਼ਰਵਰੀ ਦੌਰਾਨ ਹੀ ਲਗਾਏ ਜਾਂਦੇ ਹਨ। ਇਸ ਕਰਕੇ ਪੌਦਿਆਂ ਦੀ ਮੰਗ ਜਨਵਰੀ-ਫ਼ਰਵਰੀ 2016 ਲਈ ਦਿੱਤੀ ਜਾਵੇ।
4. ਜਿਹੜੇ ਕਿਸਾਨ ਆਪਣੀ ਜ਼ਮੀਨ ਖੇਤੀ ਵਿਭਿੰਨਤਾ ਤਹਿਤ ਪਾਪਲਰ ਆਧਾਰਤ ਵਣ ਖੇਤੀ ਕਰਨ ਲਈ ਚਾਹਵਾਨ ਹਨ, ਉਨ੍ਹਾਂ ਲਈ ਇਹ ਸਕੀਮ ਇੱਕ ਸੁਨਹਿਰੀ ਮੌਕਾ ਹੈ।
5. ਪਾਪਲਰ ਆਧਾਰਤ ਵਣ ਖੇਤੀ ਲਈ ਪਾਪਲਰ ਦੇ ਕਲੋਨ ਦੀ ਸਹੀ ਚੋਣ ਬਾਰੇ ਵਣ ਵਿਭਾਗ ਵੱਲੋਂ ਤਕਨੀਕੀ ਜਾਣਕਾਰੀ ਸਮੇਂ-ਸਮੇਂ ਸਿਰ ਮੁਹੱਈਆ ਕਰਵਾਈ ਜਾਵੇਗੀ।
6. ਪਾਪਲਰ ਆਧਾਰਤ ਵਣ ਖੇਤੀ ਵਿੱਚ ਅੰਤਰ ਖੇਤੀ ਤਹਿਤ ਪਹਿਲੇ 3 ਸਾਲ ਵਿੱਚ ਹਾੜੀ ਵਿੱਚ ਕਣਕ, ਸਰ੍ਹੋਂ, ਆਲੂ, ਬਰਸੀਮ, ਜਵੀਂ ਅਤੇ ਸਾਉਣੀ ਵਿੱਚ ਚਰੀ, ਬਾਜਰਾ, ਹਲਦੀ, ਮੇਥਾ, ਮੂੰਗੀ ਆਦਿ ਦੀਆਂ ਫ਼ਸਲਾਂ ਬੀਜੀਆਂ ਜਾ ਸਕਦੀਆਂ ਹਨ ਅਤੇ ਉਨ੍ਹਾਂ ਦੀ ਪੈਦਾਵਾਰ ਤੇ ਕੋਈ ਜ਼ਿਆਦਾ ਅਸਰ ਨਹੀਂ ਪੈਂਦਾ।
7. ਇਸ ਸਕੀਮ ਅਧੀਨ ਕਿਸਾਨਾਂ ਤੋਂ ਬੂਟਿਆਂ ਦੀ ਕੋਈ ਕੀਮਤ ਨਹੀਂ ਵਸੂਲੀ ਜਾਵੇਗੀ ਅਤੇ ਸਾਰੀ ਆਮਦਨ ਕਿਸਾਨਾਂ ਦੀ ਹੋਵੇਗੀ।
8. ਇਸ ਸਕੀਮ ਦੇ ਲਾਗੂ ਹੋਣ ਉਪਰੰਤ ਲੱਕੜ ਦੀ ਹੋਣ ਵਾਲੀ ਪੈਦਾਵਾਰ ਵਾਸਤੇ ਪਹਿਲਾਂ ਹੀ ਬਹੁਤ ਮੰਗ ਹੈ।
9. ਇਸ ਸਕੀਮ ਅਧੀਨ ਲਗਾਏ ਗਏ ਦਰੱਖਤ ਅਧੀਨ ਰਕਬੇ ਉਤੇ ਕੋਈ ਵਣ ਕਾਨੂੰਨ ਲਾਗੂ ਨਹੀਂ ਹੋਵੇਗਾ। ਦਰੱਖਤਾਂ ਅਤੇ ਜ਼ਮੀਨਾਂ ਉੱਤੇ ਪੂਰਾ ਹੱਕ ਹਮੇਸ਼ਾ ਕਿਸਾਨਾਂ ਦਾ ਹੀ ਰਹੇਗਾ।

ਜ਼ਿਲ੍ਹਾਵਾਰ ਸੰਪਰਕ ਨੰਬਰ ਹੇਠ ਲਿਖੇ ਅਨੁਸਾਰ ਹਨ:

ਜ਼ਿਲ੍ਹਾ	ਵਣ ਮੰਡਲ	ਸੰਪਰਕ ਨੰ:	ਜ਼ਿਲ੍ਹਾ	ਵਣ ਮੰਡਲ	ਸੰਪਰਕ ਨੰ:
ਰੋਪੜ	ਰੋਪੜ	01881222231	ਮਾਨਸਾ	ਮਾਨਸਾ	01652227280
ਹੁਸ਼ਿਆਰਪੁਰ	ਹੁਸ਼ਿਆਰਪੁਰ	01882250715	ਲੁਧਿਆਣਾ	ਲੁਧਿਆਣਾ	01612550089
	ਨਵਾਂਸ਼ਹਿਰ ਐਟ ਗੜ੍ਹਸ਼ੰਕਰ	01884282031	ਫ਼ਤਿਹਗੜ੍ਹ ਸਾਹਿਬ	ਪਟਿਆਲਾ	01752363852
	ਦਸੂਹਾ	01883283007		ਸਾਹਿਬਜ਼ਾਦਾ ਅਜੀਤ ਸਿੰਘ ਨਗਰ	01722298000
ਸ਼ਹੀਦ ਭਗਤ ਸਿੰਘ ਨਗਰ	ਨਵਾਂਸ਼ਹਿਰ ਐਟ ਗੜ੍ਹਸ਼ੰਕਰ	01884282031	ਸਾਹਿਬਜ਼ਾਦਾ ਅਜੀਤ ਸਿੰਘ ਨਗਰ	ਸਾਹਿਬਜ਼ਾਦਾ ਅਜੀਤ ਸਿੰਘ ਨਗਰ	01722298000
ਜਲੰਧਰ	ਜਲੰਧਰ ਐਟ ਫ਼ਿਲੌਰ	01826222537	ਫ਼ਿਰੋਜ਼ਪੁਰ	ਫ਼ਿਰੋਜ਼ਪੁਰ	01632220698
ਕਪੂਰਥਲਾ	ਜਲੰਧਰ ਐਟ ਫ਼ਿਲੌਰ	01826222537	ਫ਼ਾਜ਼ਿਲਕਾ	ਸ੍ਰੀ ਮੁਕਤਸਰ ਸਾਹਿਬ	01633262220
ਗੁਰਦਾਸਪੁਰ	ਗੁਰਦਾਸਪੁਰ	01874222418	ਬਠਿੰਡਾ	ਬਠਿੰਡਾ	01642271555
ਪਠਾਨਕੋਟ	ਪਠਾਨਕੋਟ	01862220349	ਸ੍ਰੀ ਮੁਕਤਸਰ ਸਾਹਿਬ	ਸ੍ਰੀ ਮੁਕਤਸਰ ਸਾਹਿਬ	01633262220
ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ	ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ	01832585480	ਫ਼ਰੀਦਕੋਟ	ਫ਼ਿਰੋਜ਼ਪੁਰ	01632220698
ਤਰਨ ਤਾਰਨ	ਅੰਮ੍ਰਿਤਸਰ	01832585480	ਮੋਗਾ	ਫ਼ਿਰੋਜ਼ਪੁਰ	01632220698
ਪਟਿਆਲਾ	ਪਟਿਆਲਾ	01752363852			
ਸੰਗਰੂਰ	ਸੰਗਰੂਰ	01672234293			
ਬਰਨਾਲਾ	ਸੰਗਰੂਰ	01672234293			

ਪ੍ਰਧਾਨ ਮੁੱਖ ਵਣ ਪਾਲ (.ਰ) ਪੰਜਾਬ
ਸੰਪਰਕ ਨੰਬਰ : 0172-2298005

विविधता में एकता भारत की विशेषता

— डॉ. राजनारायण शुक्ल

सभी जानते है कि भारत वर्ष विविधताओं से भरा देश है। भारत वर्ष की इस विशेषता को लोग उसकी अद्‌भुत विशेषता बताते हैं और यह भी कि भारत की महानता उसकी विविधता में है और उसकी सुंदरता भी। भारत की यह विविधता उसके रहने वाले मनुष्यों की जाति और रंग के अलग होने में ही नहीं अपितु उसकी नदियों, पहाड़ो, मरूस्थलों के कारण बनी भौगोलिक विविधता में भी है। उसके रहन–सहन के ढंग, भाषा और बोली में भी है, वेशभूषा में, खानपान में तो यह विविधता और भी आकर्षक और रंगीन हो जाती है। यह विविधता मनुष्यों और उसके द्वारा निर्मित सभ्यता में ही नहीं प्रकृति में भी दिखाई देती है। दुनिया के तमाम देशों में पूरे के पूरे देश में कहीं केवल गर्म ऋतु है तो कहीं केवल सर्दी और कहीं–कहीं समान तापमान का मौसम। कहीं –कहीं छः माह दिन और छः माह रात्रि। लेकिन भारत वर्ष को प्रकृति ने अद्‌भुत विविधता से संवारा है। इस एक देश में ही कहीं पहाड़ों पर जबरदस्त बर्फवारी होती है, शीत लहर चलती है तो ठीक उसी समय दक्षिण भारत में मौसम सुखद होता है। कभी–कभी गर्मी इतनी भीषण हो उठती है कि चराचर के जीव–जंतु, पेड़–पौधे जलन से छटपटाने लगते हैं तो उसी समय पहाड़ों में शीतल मंद सुगंधित पवन भारत के भाल को सहलाती–दुलारती नजर आती है। कहीं एक बूंद पानी को तरसती निगाहें आसमान में बादलों को निहारती रहती है तो कहीं पानी की धार रूकती ही नहीं। कैसी भव्यता है, कैसी विचित्रता है, कैसी विविधता है इस एक ही देश भारत में। ऐसा जान पड़ता है कि मानों ईश्वर ने जब सारे मनुष्यों जीव–जंतुओं के लिए पृथ्वी की रचना की, तो उसे अपने लिए भी रहने को एक देश की आवश्यकता अनुभव हुई। उसने अनेक देशों में जाकर देखा और वहां की तमाम भव्यताओं के बाद भी उसे वहां मौसम की एकरसता का आभास हुआ, तब उसने भारतवर्ष बनाया जहां उसने संसार में उपलब्ध सभी ऋतुओं को एक साथ आमंत्रित किया। भारत के मस्तक पर शीतल लेप के रूप में उसने हिमालय को रखा, तो पैर पखारने के लिए नमकयुक्त जल से भरे सागर को। यह अकल्पनीय कल्पना है या साक्षात् सत्य का स्वरूप है। हम देख ही रहे हैं। और इसी विविधता में एकता का रूप कैसा, तो इसके तीन ओर महासागर अठखेलियां ले रहा है और चौथी और हिमालय की गगन चुंबी चोटियां उसकी सीमा बनाकर उसके एक देश होने की घोषणा सारी दुनिया में कर रहा है। वायुपुराण में स्पष्ट उल्लेख है–

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्
वर्ष तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।

इतनी सारी भौगोलिक विशेषताओं को उत्पन्न करने के कारण भारत को एक विशाल क्षेत्र में स्थित होना ही था। अतः आंतरिक रूप से भारतीय क्षेत्र में तीन रचनाएं स्पष्ट हुई भारत का उत्तरी भाग जो हिमालय के दक्षिण से लेकर विंध्य के उत्तर तक फैला हुआ है, विंध्य से लेकर कृष्णा नदी के उत्तर तक का भाग और कृष्णा नदी से लेकर कन्याकुमारी तक का भू–भाग। प्राचीन समय में इन भागों के विशाल क्षेत्रों में दुर्दम्य जंगल रहे जिसके कारण एक ओर से दूसरी ओर जाना बेहद दुर्गम था, जिसके कारण भौगोलिक विविधता के साथ–साथ मानवीय सभ्यता की विविधताएं, खान–पान वेशभूषा, भाषा–बोली की विविधताएं आनी प्रारंभ हुई। इसीलिए यह कार्य भौगोलिक एकता के रूप में प्रकृति ने पहले ही संपन्न कर दिया था। इस एकता को देखते हुए ही इस देश के राजाओं और ऋषियों ने सांस्कृतिक रूप से इसे एक बनाए रखने का कार्य भी

प्राचीन काल में ही प्रारंभ कर दिया था। आश्चर्य की बात है कि भारत के जो शक्तिशाली सम्राट् विदेशों की धरती को पराजित करने उन्हें विजित करने के प्रति जितने उदासीन रहे भारत की संपूर्ण धरती के एकछत्र सम्राट् बनने की उनकी भावना उतनी ही प्रबल रही। भारत के अंदर परस्पर युद्धों का जो इतिहास है उसका सबसे प्रमुख बात भारत का एकछत्र सम्राट् बनने की लालसा, उसे एक रखने की भावना भी थी जिससे वह चक्रवर्ती सम्राट् बनता था।

भारत की विविधता में एकता का इतिहास आर्यों के इतिहास के साथ ही प्रारंभ हो जाता है। भारत में आर्य इतिहास के बारे में कई मत हैं। कुछ पाश्चात्य विचारक और उनसे प्रभावित भारतीय विचारक भी आर्यों का मूल उद्गम भारत से बाहर मानते हैं। कोई उत्तरी ध्रुव तो कोई दक्षिणी रूस या कोई ईरान को आर्यों का मूल उद्गम मानते हैं। पर यह विचार केवल इसलिए जन्म लेते हैं कि संसार की सभ्यता और संस्कृति का उद्गम भारत को मानने में पाश्चात्य या वामपंथी विचारकों को मानसिक कठिनाई होती है। इतिहास को जानने का सही वैज्ञानिक ढंग यूरोपीय ही है, जब हम यह मान लेते हैं तो इस ढंग से की गई व्याख्या सत्य ही होगी यह भी निश्चित सा हो जाता है। इसीलिए सरलता से भारतीय विचारक भी इसी दिशा में विश्वासपूर्वक आगे बढ़ जाते हैं, परंतु इस धारणा का एक पहलू यह भी है कि जब वैज्ञानिक ढंग प्रयोग करते वक्त हम किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित हैं, तो हम उस ढांचे में अपने विचार को जबरदस्ती ठूंसकर उसे वैज्ञानिक सिद्ध करते हैं। आर्य अपने साहित्य में सप्तसिंधु को याद करते हैं उसी प्रकार जिस प्रकार मॉरीशस में बसे लोग भारत को अभी–भी याद करते हैं। परंतु विरोधी तर्क यह सामने आता है कि जब आर्य सप्तसिंधु के निवासी थे तो उन्हें वहां दस्युओं से संघर्ष क्यों करना पड़ा अर्थात् जब वह क्षेत्र दस्युओं का था और आर्य बाहर से आकर वहां कब्जा कर रहे थे? यह हास्यास्पद तर्क है। आज भारत में आतंकवादियों से संघर्ष करना पड़ रहा है, फ्रांस इत्यादि और कई देशों को भी तो क्या दुनिया या भारत आतंकवादियों का मूल देश माना जाए, और हम यहां जबरन कब्जा कर रहे ऐसा माना जाए, क्या आगे का वैज्ञानिक इतिहास इस प्रकार लिखा जाएगा? सभ्य समाज के बीच इस प्रकार के लोगों का संघर्ष सदैव चलता रहा है पर वह उनके मूल निवासी होने न होने का प्रमाण नहीं बनता। एक दूसरी स्थापना यह आती है कि अगर आर्य कश्मीर, पंजाब, और सप्तसिंधु के निवासी थे (अविनाशचंद दत्त, श्री सम्पूर्णानंद वर्मा आदि विद्वान इसी मत के हैं)। तो उनके कुछ साथी यहां से ईरान, मिश्र, रूस इत्यादि दुनिया भर के देशों में क्यों गए जबकि भारत की भूमि इतनी सुंदर थी कि जो भी जाति यहां आई वो फिर भारत से बाहर नहीं गई। इसका उत्तर विरोधी स्वयं देते हैं उत्तरी ध्रुव में आर्यों का मूल स्थान मानने वाले कहते हैं कि ऋग्वेद के ऊषा सूक्त में ऊषा के लिए आर्यों ने अप्रतिम भक्ति का प्रदर्शन किया है जहां ऊषा उदित होकर महीनों ठहरी रहती है तो ऐसी धरती जहां के प्रति ऐसी भक्ति हो, आर्य उसे छोड़कर भारत क्यों आए? इसका उत्तर उनकी एक अन्य धारणा में मिलता है। आर्य स्वभाव से घुमक्कड़ प्रवृत्ति के साहसी लोग थे। कश्मीर और पंजाब के अपने मूल उद्गम से जनसंख्या बढ़ने के कारण जब उन्हें जमीन की आवश्यकता पड़ी तो स्वाभाविक रूप से भी और घुमक्कड़ तथा आविष्कारक प्रवृत्ति के कारण वह चारों ओर फैलने लगे इसी क्रम में उनकी शाखाएं कश्मीर, पंजाब और सप्तसिंधु के उनके मूल उद्गम से ईरान, मिश्र, रूस आदि दुनिया के क्षेत्रों में फैलनी शुरू हुई जिसके निशान हमें आज भी मिल रहे हैं। उत्तर के क्षेत्रों में जब उनका विस्तार अधिकाधिक होना प्रारम्भ हुआ तो वहां के निवासियों से उनका संपर्क बढ़ना प्रारंभ हुआ। इस क्रम में उन्हीं के समाज में विद्यमान दुष्ट और दस्यु प्रकृति के लोगों से उनका संघर्ष उस समाज की रक्षा के लिए ही हुआ होगा।

अंग्रेजी राज्य के समय का एक प्रकरण इतिहास में आता है कि जब अंग्रेजों का यहां राज्य था तो हमारे राजस्थान और उत्तर भारत के बड़े क्षेत्रों में ठगों का एक व्यवस्थित गिरोह था जो व्यापार के लिए जाने वाले काफिलों को जंगलों में घेरकर मार देता था और सारा धन लूट लेता था। अंग्रेजों ने उसे नेस्तानाबूत कर दिया जिससे तत्कालीन भारतीय समाज का बड़ा उपकार हुआ। क्या ऐसा नहीं हो सकता कि उस समय समाज में सक्रिय इसी प्रकार के तत्त्वों से आर्यों का संघर्ष हुआ जिससे तत्कालीन समाज को आर्यों के प्रति विश्वसनीयता हासिल हुई। इस विचार को मानने का सबसे ठोस कारण यह है कि दुनिया में अंग्रेज जब

अमेरिका गए उन्होंने वहां के मूल निवासियों का व्यापक संहार किया व वहां अपना अधिकार कर लिया आस्ट्रेलिया में भी ऐसा ही हुआ, जबकि भारत में आर्य–द्रविड़ समन्वय का इतिहास विविधता में एकता का महान् दस्तावेज है।

आज यह बात स्पष्ट है कि द्रविड़ सभ्यता भारत की प्राचीन सभ्यता है लेकिन कुछ पाश्चात्य विचारक इलियट स्मिथ, पेरी, कर्नल होडील्च मानते है कि वे मिस्रजाति या सामी जाति से संबंध रखते हैं अथवा वे मंगोल भंडार के हैं। उनके विषय में श्री रामचंद दीक्षित के विचार ज्यादा सटीक हैं। उनके अनुसार भूगर्भ शास्त्रीय युगों में मानव प्राणी दक्षिण भारत में मौजूद थे तब क्यों नहीं माना जाए कि द्रविड़ उसी भण्डार से विकसित हुए हैं? सही सिद्धांत यही है कि द्रविड़ दक्षिण भारत के ही मूल निवासी हैं इसके विपरीत की धारणाएं कि भूमध्यसागर, ब्रहुई जाति या छोटा नागपुर में द्रविड़ तथा द्रविड़ भाषा का प्रभाव कैसे पहुंचा यह शोध का तो विषय है पर इससे द्रविड़ों का वहां से दक्षिण आने का विचार उसी तरह भ्रामक है जैसे आज से हजार वर्ष बाद मलेशिया या सिंगापुर में बसे तमिलों के कारण कोई यह विचार दे कि तमिल भारत में सिंगापुर या मलेशिया से आए हैं। इसी तरह भारत में कभी आग्नेय जाति, नीग्रो और बहुत बाद में शक आभीर, हूण, मंगोल, यूनानी, यूची आदि जातियां आईं और भारतीय महासमुद्र में विलीन हो गई।

विविधता में एकता की महान संस्कृति

डॉ. राधाकृष्णन ने "हिंदु व्यू ऑव लाइफ" में कहा है कि हिंदुत्व ने कुछ गिने हुए सिद्धांतों में कट्टरता से विश्वास करने के बदले, अत्यंत व्यापक उदारता का विकास किया। आदिवासी जनता के पास जो अनेक देवी–देवता थे तथा बाद में जो देवता दूसरी जातियों के साथ आर्यवृत्त में बाहर से आए, उन सबको हिंदुत्व ने स्वीकार कर लिया एवं काल क्रम में उसने यह भी सिद्ध कर दिखाया कि यह देवी–देवता हिंदुत्व के ही हैं।"

आर्य दक्षिण भारत में धीरे–धीरे विकास के क्रम में ही पहुंचे। उनके बीच संघर्ष का कोई उदाहरण ऋग्वेद में नहीं मिलता। हां दक्षिण में प्रचलित जो जनश्रुतियां हैं उनके अनुसार वह देश जंगलों से भरा था और उसे विधिवत् बसाने का कार्य अगस्त्य ऋषि ने किया था। केरल में यह जनश्रुति चलती है कि केरल और कोंकण की भूमि को समुद्र से निकालने का काम परशुराम ने किया था। दरअसल तमिल परंपरा में एक कथा प्रचलित है कि शिव और पार्वती के विवाह के समय दक्षिण के सभी ऋषि मुनि उत्तरस्थ हिमपर्वत पर पहुंच गए, जिससे पृथ्वी का संतुलन बिगड़ गया। इससे घबराकर देवताओं ने शिव से प्रार्थना की कि आप किसी ऐसे ऋषि को दक्षिण भेजें जिसके साथ अन्य मनुष्य भी वहां लौट सके। शिवजी ने इस कार्य हेतु अगस्त्य को चुना। इस पर अगस्त्यजी ने कहा कि उन्हें दक्षिण भारत की भाषा तो आती नहीं फिर वहां मेरी सफलता कैसे होगी? तब शिवजी ने अपने एक ओर पाणिनि को और दूसरी ओर अगस्त्य को खड़ा किया और अपने दोनों हाथों से डमरू पर थाप मारने लगे, इससे बायीं थाप से जो शब्द निकले उससे तमिल भाषा व दायीं थाप से जो शब्द निकले उससे संस्कृत का निर्माण हुआ। इस शिक्षा से अगस्त्य ने अगस्त्यम व्याकरण लिखा जो तमिल का आदि व्याकरण माना जाता है। इस प्रकार अगस्त्य ऋषि दक्षिण और उत्तर भारत के प्रथम सेतु थे। केवल यही नहीं इस देश के एक अन्य निवासी आग्नेय जाति के लोगों से लेकर बाद में जो जातियां भारत वर्ष में यद्यपि आक्रमणकारी के रूप में आईं उनके प्रति भी प्रारंभिक संघर्ष के बाद यहां के निवासियों ने घृणा का भाव नहीं रखा अपितु उन्हें अपने में ही समाविष्ट कर लिया। रामधारी सिंह दिनकर लिखते हैं, "आर्य–द्रविड और अन्य जातियों के लोग जब एक समाज के अंग बन गए तब उनकी आदतें और विश्वास भी परस्पर एकाकार हो गए। विभिन्न प्रकार के लोगों के समघट्ट हो जाने से जो जनता तैयार हुई वही हिंदू जाति की बुनियादी जनता हुई, और विभिन्न जातियों की आदतों, विश्वासों, दंतकथाओं, विचारों, भावनाओं और रीति–रिवाजों के मिल जाने से जो संस्कृति उत्पन्न हुई, वही वैदिक या हिंदू संस्कृति का मूलाधार हुई। तब से जो लोग भी इस देश में आए जैसे यूनानी पार्थियन, मंगोल, यूची, शक, आभीर, हूण और मुस्लिम आक्रमण से पहले आने वाले तुर्क वे सब के सब इसी हिंदू–संस्कृति के महासमुद्र में विलीन होते गए और

काल क्रम में वे सब हिंदू हो गए। वे कहते हैं कि भारतीय संस्कृति की जो विशिष्टताएं उसे विश्व की अन्य संस्कृतियों से विभक्त करती हैं, वे केवल हिंदुओं में ही नहीं है, बल्कि उनका पूरा प्रभाव भारतवासी मुसलमानों और ईसाइयों पर भी है।''

विविधता में एकता का एक विराट् कार्य रामकथा के माध्यम से भी इस देश में हुआ। एक ही कथा में अयोध्या, चित्रकूट, पंचवटी, किष्किंधा, रामेश्वरम और लंका तक सारा देश एक ही दिखाई देता है। सारे देश में रामकथा पर अलग–अलग भाषा में उसी आदर से लिखा गया। कंबनकृत तमिल रामायण, तेलुगु में द्विपाद रामायण, मलयालम में रामचरितम, कन्नड में तोरावेरामायण, बंगला में कृत्तिवास रामायण, हिंदी में रामचरितमानस, ओडिया में बलरामदास रामायण, मराठी में भावार्थ रामायण जैसे अनेक रामायण ग्रंथ लिखे गए। संस्कृत भाषा में ऐसे अनेक ग्रंथ पहले ही लिखे जा चुके थे।

भारत की एकता में व्रतों–उत्सवों ने भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक उत्सवों के नाम, रूप बदलते हैं पर उनका समय व धार्मिक भावना उसी प्रकार मिलती–जुलती है। भारत की नदियों, पर्वतों, पीपल, तुलसी, वट, गौ, गंगा आदि के प्रति आदर का भाव उनमें एक समान ही है। इस पर न रंग और रूप का प्रभाव पड़ता है ना ऊंचे कद और छोटे कद का। न ऊंची नाक और चपटी नाक का कोई प्रभाव देखने को मिलता है। यहां के ईसाई और मुसलमान भी सांस्कृतिक रूप से विशुद्ध भारतीय हो गए। विश्व के किसी देश के स्वधर्मी लोगों के साथ उनका तालमेल असंभव ही है, जिस सहजता के साथ यहां के ईसाई और मुसलमान यहां के हिंदुओं के साथ रहना पसंद कर सकते है वह सहजता उन्हें, सीरिया, ईरान, ईराक, तुर्की आदि मुस्लिम देशों के अपने स्वधर्मियों में प्राप्त होना संभव नहीं। इसी भाव को उसकी ऊंचाई तक ले जाकर समझना और कट्टरपथियों, भारतीय संस्कृति को चोट पहुंचाने वाले तत्त्वों से सावधान रहने का भाव सदैव ध्यान में रखना होगा। इसी एकता की धारा हिमालय की नदियों से निकलकर पूरे देश के वायुमंडल को सुगंधित करती हुई हिंद महासागर तक पहुंचती है। जिसे हम हिंदुस्थान कहते हैं वृहस्पति–आगम में उल्लेख है–

हिमालय समारभ्म्य यावद इंदु सरोवरम्
तं देवनिर्मितं देशं हिंदुस्थानं प्रचक्षते।

हिंदुस्थान की इसी एकता की प्रशंसा करते हुए एक विचारक– सी.ई.एम. जोड लिखते हैं कि मानव जाति को भारतवासियों ने जो सबसे बड़ी चीज, वरदान के रूप में दी है वह यह है कि भारतवासी हमेशा ही अनेक जातियों के लोगों और अनेक प्रकार के विचारों के बीच समन्वय करने को तैयार रहे हैं। और सभी प्रकार की विविधताओं के बीच एकता कायम करने की उनकी लियाकत और ताकत लाजबाव रही है।''

आश्चर्य की बात यह है कि आज भारत के कुछ तथाकथित बुद्धिजीवी भारत की इसी हजारों साल पुरानी विशेषता पर प्रश्न उठा रहे हैं और विश्व में भारत की छवि धूमिल कर रहे हैं। लेकिन जब तक महात्मा गांधी, रोम्यां रोला, मैक्समूलर, महर्षि अरविन्द, स्वामी विवेकानंद के विचार विश्व में सम्मानित होते रहेंगे ऐसे बुद्धि परजीवियों के विचार हास्यास्पद श्रेणी में स्थान पाते रहेंगे। भारत की विविधता में ही एकता के महान् सूत्र गुंफित हैं और इन्हें अलग कर पाना संभव नहीं।

(लेखक अभाविप के पश्चिमी उत्तर प्रदेश के प्रदेश संगठन मंत्री रह चुके हैं। वर्तमान में एस.डी.पी.जी. कॉलेज, गाजियाबाद में हिन्दी विभाग के प्राध्यापक हैं)

ब्रह्माण्ड की सारी शक्तियां पहले से हमारी हैं। वो हम ही हैं जो अपनी आँखों पर हाथ रख लेते हैं और फिर रोते हैं कि कितना अन्धकार है!

(स्वामी विवेकानंद)

''युवा भारत- समर्थ भारत''

— डॉ. सुभाष शर्मा

भारत एक समृद्ध, समर्थ और शक्तिशाली राष्ट्र बने, यह देश के हर युवा का सपना है। यही सपना आंखों में लिए हुए हजारों युवा देश की आजादी के लिए फांसी के फंदों पर झूले, अंडमान की काल कोठियों में सारी जवानी गला दी, घर और परिवार के सारे सुख त्याग दिए। यही सपना देखते हुए स्वामी विवेकानंद ने भविष्यवाणी की थी, "मैं देख रहा हूं कि भारत माता फिर से जाग रही है और पहले से भी ज्यादा तेज के साथ विश्वगुरू के सिंहासन पर विराजमान हो रही है।" भारत के युवा वर्ग के प्रेरणास्रोत पूर्व राष्ट्रपति अब्दुल कलाम ने भी बहुत विश्वास प्रकट करते हुए कई बार कहा है कि 2020 तक भारत विश्व की एक बड़ी शक्ति बन जाएगा। देश के करोड़ो लोगों की आंखों मे पल रहा यह सपना क्या कभी पूरा होगा या सिर्फ सपना ही रहेगा।

इस प्रश्न का उत्तर हां में देना सुखद तो है पर जोखिम भरा भी है। हां इसलिए क्योंकि आज भारत विश्व की सबसे तेज बढ़ती हुई अर्थव्यवस्थाओं में से एक है तथा विश्व के सब देश भारत से व्यापार बढ़ाने के लिए लालायित लग रहे हैं। अंतरिक्ष विज्ञान से लेकर सूचना और तकनीकी तक हर क्षेत्र में भारत की गूंज है। विश्व व्यापार संगठन की बैठक हो या फिर पर्यावरण का कोई अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन, हर जगह भारत की सशक्त आवाज सुनाई पड़ रही है। जोखिम इसलिए क्योंकि लगभग 30 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे है, दुनिया के 50 प्रतिशत से ज्यादा कुपोषित बच्चे भारत में ही है। असमानता भयंकर रूप से बढ़ रही है, 35 प्रतिशत लोग अनपढ़ है, बेरोजगारी की दर 10 प्रतिशत से भी ऊपर है तथा भ्रष्टाचार संस्थागत हो चुका है। इन परिस्थितियों में एक महाशक्ति के रूप में उभरना एक बड़ी चुनौती है।

इन सब चुनौतियों से पार पाकर भारत एक महाशक्ति के रूप में उभरेगा तो उसका सबसे बड़ा कारण युवा शक्ति होगी। आज भारत विश्व का सबसे युवा देश है। भारत की 65 प्रतिशत आबादी 35 वर्ष से नीचे है। यह प्रतिशत और भी बढ़ने वाला है क्योंकि भारत में 30.1 प्रतिशत लोग 14 साल से कम आयु के हैं जो चीन (19. 7 प्रतिशत) तथा अमेरिका (20.1 प्रतिशत) के मुकाबले कहीं ज्यादा है। इसका अर्थ है कि आने वाले समय में जब यह बच्चे बड़े होंगे तो भारत की युवा शक्ति का प्रतिशत दुनिया के बाकी देशों के मुकाबले कहीं ज्यादा होगा। आने वाले सालों में जब दुनिया में वृद्ध लोग बढ़ रहे होंगे, भारत और युवा होता जा रहा होगा। भारत की यही युवा शक्ति भारत को महाशक्ति बना सकती है। परंतु इसके लिए हमें पांच महत्त्वपूर्ण विषयों पर प्राथमिकता से काम करना होगा।

सबसे प्रथम विषय है कि हमारे युवा **शिक्षित युवा** बनें। अगले दो दशकों तक हर साल 70 लाख नए विद्यार्थी स्कूलों में आएंगे। इनको अच्छी गुणवत्ता की प्राथमिक शिक्षा देने के लिए स्कूलों की वर्तमान दयनीय दशा को सुधरने के साथ–साथ हमें लगभग 5 लाख नए स्कूलों का निर्माण भी करना होगा। अभी मात्र 22 प्रतिशत विद्यार्थी ही उच्च शिक्षा में जा रहे है। हमें इसको बढ़ाकर 70 प्रतिशत तक ले जाना होगा जिनमें से आधे विद्यार्थियों को तकनीकी शिक्षा के साथ जोड़ना होगा। एक अध्ययन के अनुसार वर्तमान में 45 प्रतिशत

DEV BHOOMI GROUP OF INSTITUTIONS

• DEHRADUN • SAHARANPUR • KURUKSHETRA

10th BATCH A DECADE OF EXCELLENCE

Estd. 2005 Approved by AICTE, New Delhi, MHRD Government of India

Ranked 25 in North India by "The Week" | *Assigned AA+ by "Careers"* | *Placed among top 28 Colleges in North India by "Business Barons"* | *Placed among top 26 Professional Colleges in India by "Careers Link"*

Study Programs

Engineering & Technology
- B.Tech (ME/CSE/ECE/EEE/Civil)
- M.Tech (CSE/ME/Civil/ECE/EEE)

Pharmacy
- D.Pharm.
- B.Pharm.
- M.Pharm

Management
- BBA
- MBA(Marketing/HR/Finance/IT/IB)

Computer Application
- B.Sc.(IT)
- BCA
- MCA

Polytechnic (Diploma)
- (ME/Civil/EE/EC/CS/Automobile)

Upcoming Courses
- FORESTRY
- AGRICULTURE
- COMMERCE
- HOTEL MANAGEMENT

Modern Facilities for effective learning

Well equipped labs for practical orientation

Student Projects for creative learning

Seminars & Conferences for Knowledge update

193 hrs. Aptitude/Personality Development Program

200 hrs. Value added Modules on Cutting Edge Technology

Mozilla's 1st Open Source training center in Uttarakhand

Faculty with rich academic & industry experience from (IITs, NITs, IIITs, BHU, JNU, IIM, DU, DRDO, DEAL, IIP)

Legendary Placements

- **190+** Companies Visited, **1100+** Jobs Offered for Batch 2014
- **90+** Companies already visited for Batch 2016 till 20 Jan 2016
- Highest Package- **35 LPA** in Robbins India Pvt. Ltd.
- **4318** Offers in last 4 Years

Our Major Recruiters for 2014-15 Batch

NEC | Accenture | IFB | VIP | IBM | L&T Infotech | iGATE | Mahindra | Mindtree | JSW | UNISYS | Atos | TAFE | BOSCH | AON Hewitt

Manduwala, Chakrata Road, Dehradun- 248007 | Mobile : 9458967245/9458967246 | Tel : 0135 - 2694243/42/41

Toll Free No.: 1800 200 3996 | www.dbgidoon.ac.in

समृद्ध भारत

– गोपाल कृष्ण अग्रवाल

भारत आर्थिक समृद्धता के उच्चशिखर पर खड़ा था। वैश्विक व्यापार का 26 प्रतिशत हिस्सा भारत से होता था। यह समय था जब हमारा सांस्कृतिक प्रभाव विश्व के बड़े हिस्से पर था। हमारे व्यापारी समुद्री मार्ग से सभी जगह जाते थे। धीरे–धीरे विदेशी आक्रांताओं के आक्रमण ने हमें खोखला कर दिया। हम गुलाम हो गए। विश्व व्यापार में अब हमारी हिस्सेदारी घटकर 2 प्रतिशत से भी कम हो गई है।

समृद्ध भारत का निर्माण, हमारी परिकल्पना में समाज के सर्वांगीण विकास के द्वारा ही संभव है। हमें स्वच्छ भारत, स्वस्थ भारत, शिक्षित भारत, बेरोजगारी व भूख से मुक्त भारत एवं महिला सशक्तिकरण की तरफ तेजी से कार्य करना है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए हमें आर्थिक विकास की आवश्यकता पड़ेगी। जिसमें देश में औद्योगिक प्रगति, कृषि विकास, आधारभूत मजबूत ढांचा, सड़क, मकान, रेल, स्कूल, बैंक सभी शामिल है। सरकार के पास जब तक संसाधन नहीं होंगे देश प्रगति नहीं कर सकता है।

यह सभी संभव कैसे होंगे? सवाल यह है। भारत में विश्व की 1/6वां जनसंख्या रहती है। हमारी इतनी बड़ी जनसंख्या में 65 प्रतिशत की उम्र 35 वर्ष से कम है। इतना बड़ा युवा वर्ग अगर संकल्प ले और दृढ़ निश्चय के साथ आगे बड़े तो सब कुछ संभव है। लेकिन इस वर्ग में सही दिशा होनी चाहिए और यह लक्ष्य प्राप्त करने में पूर्ण सक्षम भी हो। टाटा कंसल्टेंसी के अनुसार हमारे कार्यशील लोगों में मात्र 5 प्रतिशतः ही लोगो को कोई औपचारिक प्रशिक्षण प्राप्त है।

विश्व में जनसंख्या की औसत उम्र बढ़ रही है, सन् 2020 में चीन की जनसंख्या की औसत आयु 37 वर्ष, अमेरिका की 45 वर्ष एवं जापान की 48 वर्ष होगी, लेकिन भारत की जनसंख्या की औसत आयु 29 वर्ष होगी। जिसके कारण कई देशों में जैसे कि जापान में कार्य सक्षम लोगों की संख्या कम हो रही है, कोरिया में भी यही हो रहा है। लेकिन भारत में कार्य सक्षम लोगों की संख्या बढ़ रही है। हमारी चुनौती इनके लिए रोजगार ढूंढना है।

शिक्षा के क्षेत्र में विशेष परिवर्तन की आवश्यकता है। हमारी शिक्षा व्यक्ति निर्माण के लक्ष्य की तरफ अग्रसर होनी चाहिए। रोजगारपरक शिक्षा की आवश्यकता है। शिक्षा का उद्देश्य केवल जानकारी देना नहीं, बल्कि कौशल विकास होना चाहिए। तभी यह विशाल जनसंख्या डेमोग्राफिक डिविडेंट बनेगी। आई.एम.एफ. के अनुसार यह डेमोग्राफिक डिविडेंट हमारे सकल घरेलू उत्पाद में 2 प्रतिशत की वृद्धि कर सकता है ।

प्राथमिक शिक्षा के विकास के लिए स्कूलों की शिक्षा में हमें सरकारी स्कूलों को ही तवज्जो देनी होगी। इन स्कूलों का एक विशाल नेटवर्क पूरे देश में फैला है। इनकी बुनियादी व्यवस्थाएं दुरुस्त करनी आवश्यक है। इन स्कूलों में अभी भी शिक्षक व्यक्तिगत संपर्क के साथ स्थानीय परिस्थितियों के प्रति संवेदनशील है और अपने कार्य को समर्पित भाव से करने की इच्छा रखते हैं।

शिक्षित भारत के साथ स्वस्थ भारत का निर्माण भी आवश्यक है। किसी भी राष्ट्र के विकास को मापने का उत्तम मानक वहां का स्वस्थ समाज होता है। नागरिकों के स्वास्थ्य का सीधा असर उनकी कार्य–शक्ति पर पड़ता है। स्वच्छ भारत, समृद्ध भारत की ओर एक बड़ा कदम होगा, जब स्वच्छता 125 करोड़ भारतीयों के व्यक्तित्व और सामाजिक एवं राष्ट्रीय चरित्र में समाविष्ट हो जाएगी, तब भारत स्वच्छ भी होगा और समृद्ध भी होगा।

एक और महत्त्वपूर्ण बिंदु है स्वदेशी को अपनाना। देश के नागरिक अगर स्वदेशी को अपनाते हैं तो देश के उद्योग एवं व्यापार की तीव्र गति से प्रगति होगी। छोटे–छोटे घरेलू उद्योग लगेंगे, रोजगार मिलेगा और खुशहाली आएगी। स्वदेशी से ही स्वावलंबी भारत का निर्माण संभव है। प्रत्येक भारतीय का यह लक्ष्य होना चाहिए कि संपूर्ण भारत में स्वदेशी को अपनाकर भारत को विश्व के आर्थिक शक्तिशाली देशों की श्रेणी में लाना है। हमें स्वदेशी उद्योग, स्वदेशी शिक्षा, स्वदेशी चिकित्सा, स्वदेशी तकनीक, स्वदेशी ज्ञान, स्वदेशी खानपान, भारतीय भाषा, स्वदेशी वेशभूषा एवं स्वदेश के स्वाभिमान को अपनाना होगा तभी हमारा देश विश्व का महान देश बनेगा।

जिस प्रकार देश के सुदूर क्षेत्रों को राष्ट्रीय राजमार्ग से आपस में जोड़ने से सभी क्षेत्रों का सर्वांगीण विकास संभव होता है, उसी तरह देश में जो सूचना प्रौद्योगिकी की क्षमताएं हैं वह तभी पूर्ण विकसित होंगी जब हम डिजिटल इंडिया का सपना साकार करेंगे। डिजिटल इंडिया न सिर्फ देश को सूचना प्रौद्योगिकी केंद्र बनाने वाला एक कदम है बल्कि यह सरकार की दो अन्य परियोजनाओं, देश को आत्मनिर्भर और तकनीकी रूप से कुशल बनाने की लक्षित महत्त्वाकांक्षी परियोजना 'स्किल इण्डिया' और 'मेक इन इण्डिया' की सहयोगी भी साबित हो सकती हैं। निर्माण क्षेत्र में ही रोजगार प्रदान करने की क्षमता है। साथ में तकनीकी प्रौद्योगिकी समावेशी विकास और अमीर एवं गरीबों की दूरी कम करने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकता है।

(लेखक भाजपा के राष्ट्रीय प्रवक्ता एवं आर्थिक मामलों के जानकार हैं।)

एक विचार लो। उस विचार को अपना जीवन बना लो – उसके बारे में सोचो उसके सपने देखो, उस विचार को जियो। अपने मस्तिष्क, मांसपेशियों, नसों, शरीर के हर हिस्से को उस विचार में डूब जाने दो, और बाकी सभी विचार को किनारे रख दो। यही सफल होने का तरीका है।

(स्वामी विवेकानंद)

वैश्विक नेतृत्व करने में सक्षम भारत

— विकास आनंद

वैश्विक नेतृत्व से तात्पर्य ऐसा नेतृत्व जो विश्व शांति, वैश्विक संकट इत्यादि में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करे। 20वीं शताब्दी में विश्व का नेतृत्व सामान्यत: पश्चिमी देशों ने जिसमें मुख्यत: संयुक्त राज्य अमरीका, रूस, जापान, ब्रिटेन आदि ने किया। अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के विद्वानों का मानना है कि 21वीं शताब्दी एशिया की है। एशिया में भारत और चीन तेजी से उभरी हुई आर्थिक ताकत हैं। यह अनुमान है कि 2030 तक भारत की अर्थव्यवस्था तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था हो जाएगी। समस्या यह है कि महज आर्थिक ताकत होना ही वैश्विक नेतृत्व के लिए काफी नहीं है। एक स्थायी आर्थिक विकास दर के साथ–साथ राष्ट्र की विदेश नीति, दूसरे देशों से संबंध, विश्व में शांति व्यवस्था बनाए रखने में योगदान इत्यादि बातों के आधार पर ही किसी राष्ट्र के वैश्विक नेतृत्व करने की क्षमता का आकलन किया जा सकता है।

भारत में वैश्विक नेतृत्व देने के सारे कारक मौजूद हैं और समय–समय पर इस बात को सिद्ध भी किया है। इमेनुएल काट कहते हैं कि 'शक्ति' महान शक्तियों के लिए करेंसी (पैसा) के समान है। पैसे की जो भूमिका किसी अर्थव्यवस्था के लिए है वही भूमिका 'शक्ति' का अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के लिए है। सामान्यतया अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में दो तरह की शक्तियां होती हैं एक 'हार्ड पॉवर' और दूसरी 'सॉफ्ट पॉवर'। आज हम वैश्विक संसार में रहते हैं। राष्ट्र आपस में एक–दूसरे पर बहुत हद तक निर्भर है। इसलिए युद्ध की संभावना काफी कम हो गई है। सॉफ्ट पॉवर की भूमिका धीरे–धीरे बढ़ रही है। ऐसे में भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत, दुनियाभर में फैले भारतीय मूल के लोगों की अंतर्राष्ट्रीय राजनीति भारत के लिए एक बहुत ही सकारात्मक स्थिति पैदा करती है, जो भारत को और देशों से कहीं आगे खड़ा करता है। एक योग्य नेतृत्व भारत को अंतर्राष्ट्रीय नेतृत्व देने में सक्षम बना सकता है।

भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत ने हमेशा विश्व को प्रभावित किया है। आज भारत के संबंध जापान, इंडोनेशिया जैसे देशों से मधुर हैं तो इसमें हमारी सांस्कृतिक विरासत की बड़ी भूमिका है। पूर्वी एशिया में बौद्ध धर्म भारत से गया। आज भी भारी संख्या में पूर्वी एशिया से लोग बौद्ध धर्मस्थली गया और सारनाथ आदि स्थानों को देखने के लिए आते रहते हैं। अभी हाल ही में भारत के प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी के प्रयासस्वरुप विश्व के देशों ने योग के महत्त्व को मान्यता देते हुए 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में मनाने का संकल्प लिया। आज भारत के योग शिक्षक दुनियाभर में फैले हुए हैं। भारत की सांस्कृतिक ताकत भारत के लिए कूटनीतिक सफलता में अहम भूमिका अदा कर सकती है और कर भी रही है।

दुनिया भर में फैले भारतीय मूल के लोग भारत की ताकत हैं। इस ताकत को पहली बार भारत के आर्थिक राजनीतिक संबंधों के लिए उपयोग में लाने का प्रयत्न किया तो वह अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार थी, जिन्होंने 9 जनवरी को प्रवासी दिवस घोषित किया। नरेन्द्र मोदी प्रधानमंत्री के तौर पर अब तक इस प्रवासी शक्ति को भारत के आर्थिक और राजनीतिक (अंतरराष्ट्रीय राजनीति) विकास में भागीदार को बढ़ाने के लिए बहुत ही सराहनीय प्रयास किए हैं। अपने विदेश प्रवास के दौरान इन्होंने बड़ी–बड़ी सभाओं को संबोधित करके भारत के परिवर्तन में सहयोग करने का आह्वान किया है। तीन करोड़ से अधिक भारतीय मूल के लोग दुनियाभर में फैले हुए हैं, जो भारत की सफल विदेशनीति के लिए एक अहम कारक हो सकते हैं।

पहले भारत आर्थिक मदद लेता था आज यह आर्थिक मदद देता है। भारत की आर्थिक–राजनीतिक संस्कृति भी काफी सुदृढ़ है। हाल ही में विश्व में आर्थिक संकट आया लेकिन भारत पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। जैसा कि अर्थवेत्ताओं का आकलन है कि आनेवाले 15 वर्षों में भारत दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था हो जाएगी। सूचना तकनीकी में भारत आज विश्व को नेतृत्व प्रदान करने की स्थिति में है। भारत के कंप्यूटर इंजीनियर, सॉफ्टवेयर इंजीनियर दुनिया भर में फैले हुए हैं और सूचना तकनीक की

दुनिया में अपने को स्थापित किए हुए हैं। हालिया रिपोर्ट के अनुसार, भारत इंटरनेट यूजर्स के मामले में अमरीका को पीछे छोड़ने वाला है।

भारत दुनिया का सबसे अधिक नौजवान जनसंख्या वाला देश है। एक बड़ी संख्या में दक्ष श्रमशक्ति पैदा करने का असीम संभावना है। धीरे–धीरे इस दिशा में हम आगे बढ़ रहे हैं। पहले हम दुनिया को अदक्ष श्रम निर्यात करने के लिए जाने जाते थे लेकिन आज स्थिति बदली है और तेजी से बदल रही है। भारत दक्ष श्रम का ही नहीं बल्कि यह देश बड़ी–बड़ी कंपनियों को एक्जीक्यूटिव भी बड़ी संख्या में दे रहा है। वर्तमान सरकार 'मेक इन इंडिया' अभियान के तहत भारत को मैन्युफैक्चरिंग हब बनाने की दिशा में भी प्रयत्नशील है।

अभी हाल ही में पेरिस में हुए जलवायु परिवर्तन में विकासशील देशों का सफल नेतृत्व भारत ने किया। इन देशों के हितों को ध्यान में रखते हुए सी.बी.डी.आर (Common but differentiated Responsibility) के सिद्धांत को अमेरिका से मनवाने में सफल रहा जिसका विरोध अमरीका बहुत समय से कर रहा था। इसी मंच पर भारत ने 120 से ज्यादा देशों का 'वैश्विक सौर गठबंधन' बनाकर स्वच्छ ऊर्जा के विकल्प को आंदोलनात्मक रूप देने का प्रयास किया। जलवायु परिवर्तन की गंभीरता को देखते हुए भारत के इस प्रयास की विश्व पटल पर सराहना की गई है। यह सब उदाहरण उभरते हुए वैश्विक संसार को नेतृत्व देने की भारत की क्षमता को दर्शाता है। आज भारत सारे अंतर्राष्ट्रीय मंच चाहे वो सार्क हो, अशियान हो या ब्रिक हो... भारत हर ओर महत्त्वपूर्ण योगदान कर उन्हें नेतृत्व प्रदान कर रहा है।

भारत का लोकतांत्रिक मूल्य भारत को वैश्विक नेतृत्व के लिए एक बड़ी संपत्ति के रूप में है जहां यह लोकतांत्रिक मूल्य चीन जैसे देशों में आंशिक है। चीन में आज भी अभिव्यक्ति की आजादी आंशिक रूप से ही है। चीन जैसे देश में कभी भी विद्रोह की ज्वाला भड़क सकती है और देश को अस्थिर कर सकती है। भारत की लोकतांत्रिक व्यवस्था में विकसित हुई संस्थाएं आज दूसरे देशों के लिए मानक बनी हुई हैं। इस देश में विकसित हुआ चुनाव आयोग जैसी संस्थाओं की मदद आज दूसरे देश भी अपने यहां स्वतंत्र और निष्पक्ष चुनाव कराने के लिए ले रहे हैं।

वैश्विक नेतृत्व की दिशा में हमारे समक्ष काफी चुनौतियां भी हैं। अभी हम आधारभूत संरचनाओं जैसे सड़क, शैक्षिक संस्थाओं का पूरी तरह से विकास नहीं कर पाए हैं। ग्रामीण विकास और शहर के विकास में काफी असंतुलन है। भारत में प्राकृतिक संपदाओं का अपार भंडार है। जरूरत है सतत् विकास के दृष्टिकोण से उनका विवेकपूर्ण दोहन करने की। हमारा देश प्रत्येक भाग में एक विशेष तरह की संभावनाएं लिए हुए है। जरूरत है उन संभावनाओं को उनकी विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए उनका विकास करने की। उदाहरण के लिए गंगा का मैदान काफी उपजाऊ है। वहां कृषि और कृषि से संबंधित उद्योगों को और बढ़ावा देने का। उत्तर–पूर्वी भारत में फैशन बाजार की भी असीम संभावना है वहां के लोग फैशन के प्रति काफी गंभीर दिखते हैं। आवश्यकता है 'नेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ फैशन टेक्नोलॉजी' (NIFT) जैसी संस्थाओं द्वारा इस तरह की संभावनाओं को बल प्रदान करने का। इस तरह की विशेषताओं को पहचान कर उनको उभारने का, जिससे 21वीं सदी का भारत दुनिया का न केवल सांस्कृतिक और आध्यात्मिक रूप से नेतृत्व करे बल्कि भौतिक रूप से भी नेतृत्व प्रदान कर सके।

(लेखक 'कमल संदेश' के संपादक मंडल सदस्य हैं)

जब कोई विचार अनन्य रूप से मस्तिष्क पर अधिकार कर लेता है तब वह वास्तविक भौतिक या मानसिक अवस्था में परिवर्तित हो जाता है।

(स्वामी विवेकानंद)

अर्थव्यवस्था का आध्यात्मिक मॉडल है एकात्म मानववाद

— पंकज झा

शाब्दिक तौर पर भले दर्शन, विचारधारा और वाद आदि के कुछ अलग अर्थ हों लेकिन आधुनिक राजनीतिक इतिहास का अनुभव यही कहता है कि कोई भी राजनीतिक–आर्थिक दर्शन सत्ता में आने पर अकस्मात् 'वाद' हो जाता है और फिर अवसरवाद के मुहाने पर खड़ा हो समाज मुफलिसी और शोषण के किसी अंधी सुरंग की तरफ धकेले जाने को विवश कर दिया जाता है। भला गांधी के कथित वैचारिक वारिस किसी लूट के आरोप में पटियाला के कठघरे में खड़े होंगे, ऐसी कल्पना अगर उस लंगोटीधारी को होती तो शायद दक्षिण अफ्रीका से कभी वापस आते ही नहीं। इसी तरह लोहिया का रौद्र समाजवाद सत्ता में आने के बाद ऐसा 'मुलायम' हो जाएगा, जहां नर्तकियों के आगोश में अरबों का जन्मदिन मनाया जाएगा, इसकी कल्पना भी अगर राममनोहर लोहिया को होती तो शायद वे भी जर्मनी में ही खुद की उपादेयता समझ, महीनों की कठिन समुद्र यात्रा कर भारत वापसी की नहीं सोचते। जेपी भी शायद ही पटना के गांधी मैदान में बुढ़ापे और बीमारी में इंदिरा गांधी की पुलिस की लाठी खाकर सिर फुड़वाने को उद्यत नहीं होते अगर उन्हें पता होता कि उनकी (हड़प ली गई) विरासत में ऐसे–ऐसे 'तेजस्वी' पैदा होंगे जो दूध की दांत टूटने से पहले ही उनके लोकतंत्र की बागडोर थाम लेंगे। लेकिन पंडित दीनदयाल उपाध्याय ऐसे किसी पश्चाताप से मुक्त होंगे आज भी। उन्हें ऐसा कोई मुगालता नहीं था कि उनके लोग हमेशा ईमानदार ही रहेंगे।

भविष्यद्रष्टा पंडितजी जानते थे कि सत्ता का अपना एक वैशिष्ट्य होता है, अमूमन वह भ्रष्ट करती ही है। बाबा तुलसी ने जैसा कहा भी है 'प्रभुता पाइ काह मद नाहू।' एक बार पंडितजी ने कहा था कि इस बात की कोई गारंटी नहीं होगी कि उनके विचार परिवार के लोग सत्ता में आ जाने पर भ्रष्ट नहीं होंगे, हालांकि ऐसा होने पर वो चाहेंगे कि बार–बार उनके संगठन को विसर्जित कर दिया जाए। तो पूज्य दीनदयाल की वैचारिकी पर कोई भी बात करने से पहले अब खुद को यह संकल्प दिलाना है कि अपना आर्थिक आचरण ऐसा रखा जाए जिससे 'संगठन वृक्ष' लंबे समय तक हरा–भरा रहे। सृजन के साथ ही विसर्जन निश्चय ही प्रकृति का धर्म है, इसका कोई अपवाद हो भी नहीं सकता। लेकिन चिरंजीवी होना, दीर्घजीवी होना, शतायु होने की आकांक्षा भारतीय संस्कृति का अंग है, तो वैचारिक रूप से दीर्घायु होने की इस शर्त को संकल्प लेने के बाद ही पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी की वैचारिक थाती पर मंथन किया जाना समीचीन होगा।

जैसा कि हम जानते ही हैं, एकात्म मानव दर्शन को व्यावहारिक धरातल पर उतारने का समय पंडितजी को नहीं मिल पाया। उन्होंने सूत्रों में जिन कुछ बातों को प्रतिपादित करने की कोशिश की, वही विचारधाराओं के नाम पर मची मार–काट वाले इस समय में समाज के लिए औषध से कम नहीं है, हालांकि उस विचार संजीवनी को समाज रूपी मूर्च्छित लक्ष्मण तक समय सीमा में पहुंचाने का हनुमत दायित्व हम सभी को निभाना होगा, इस पहाड़ को हमें उठाना ही होगा।

बहरहाल, सदी के महान् विचारक, अपने समय के भारतीयता के एकमात्र प्रसारक, तमाम पाश्चात्य विचारों को ही थाती समझने वाले समय में विशुद्ध देसी और मौलिक विचार को सामने रखने वाले पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी द्वारा लिखे–कहे हर अध्याय पर ग्रंथों की रचना हो सकती है, शोधार्थियों द्वारा ऐसा किया जाना जारी भी है लेकिन अगर उनके एकात्म मानव दर्शन और उसके केवल आर्थिक पहलू पर ही विचार किया जाए तो कहा जा सकता है कि उन्होंने भारतीय वैचारिकी के आधार पर अर्थशास्त्र का एक आध्यात्मिक या (यूं कहें कि हिंदू मॉडल) दुनिया के सामने रखा।

कुछ वर्ष पहले वर्ल्ड हिंदू इकानोमिक फोरम का पहला दो दिवसीय सम्मेलन हांगकांग में संपन्न हुआ।

ग्रेजुएट सालाना 75000 रुपए से भी कम कमा पा रहे हैं, जो इस बात का प्रमाण है कि हमारी उच्च शिक्षा समाज की आवश्यकता के अनुरूप युवाओं को तैयार नहीं कर पा रही है। शिक्षा में बड़ी मात्रा में ढांचागत निर्माण, तकनीकी के प्रयोग को बढ़ाने तथा गुणवत्ता में सुधार के लिए हमें शिक्षा में भारी निवेश करना होगा।

दूसरा महत्त्वपूर्ण विषय है कि हमारे युवा **कुशल युवा** बनें अर्थात् भले ही वह उच्च शिक्षा में ना जा सके परंतु उन्हें अपनी रूचि के क्षेत्र में कुशलता प्राप्त हो ताकि रोजगार प्राप्त कर सकें। आज ना सिर्फ भारत में बल्कि पूरे विश्व में कुशल कारीगरों की बड़े पैमाने पर मांग पैदा हुई है। एक अनुमान के अनुसार 2020 तक अमेरिका में 1.7 करोड़, चीन में 1 करोड़, जापान में 90 लाख तथा रूस में 60 लाख लोगों की कमी हो जाएगी। जबकि भारत के पास के 4.7 करोड लोग अतिरिक्त होंगे। अगर हम युवाओं के कौशल विकास के कार्यक्रम को सफलतापूर्वक चला सकें तो हम पूरे विश्व की कुशल श्रमिकों की मांग को पूरा कर सकते हैं। हाल ही में शुरू हुई प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना इस दिशा में एक सार्थक पहल है। परंतु इसे कागज से जमीन पर उतारने के लिए सरकार को विशेष ध्यान केंद्रित करना होगा।

तीसरा महत्त्वपूर्ण विषय है कि हमारे युवा **उद्यमी युवा** बनें। अपनी बढ़ती हुई शिक्षित व कुशल युवा जनसंख्या को रोजगार के उचित अवसर उपलब्ध करवाने के लिए हमें अगले एक दशक तक लगभग 1.5 करोड़ नए रोजगार के अवसर हर साल पैदा करने होंगे। कारपोरेट जगत इतनी बड़ी संख्या में रोजगार पैदा करने में सक्षम नहीं है। इसलिए युवाओं में उद्यमशीलता की संस्कृति को बढ़ावा देना होगा। इसमें कोई शक नहीं कि उद्यमशीलता भारत के डीएनए में है। पिछले कुछ वर्षों में ही प्रथम पीढ़ी के युवा उद्यमियों ने बड़ी सख्या में सफलतापूर्वक अपनी कंपनियां खड़ी की है। फ्लिपकार्ट, स्नैपडील, मेक माई ट्रिप, बुक माई शो जैसी ऑनलाईन कंपनियां इन युवा उद्यमियों के साहस व रचनाशीलता का ही प्रतीक है। मात्र सूचना प्रौद्योगिकी में ही भारत का निर्यात पिछले दो दशकों में 100 मिलियन डालर से बढ़कर 2013–2014 में 86 बिलियन डॉलर तक पहुंच गया है। परंतु यह पर्याप्त नहीं है, अभी भी फोर्ब्स की 500 बड़ी वैश्विक कंपनियों में भारत की मात्र 2 कंपनियां ही है। आज Ease of doing buisness में 189 देशों में भारत का रैंक 130 है, वह भी केंद्र में नरेन्द्र मोदी की सरकार आने के बाद थोड़ा सुधरा है। हमें इस परिदृश्य को बदलना होगा। सरल नियम, सस्ती दर पर कर्ज तथा लालफीताशाही व भ्रष्टाचार मुक्त व्यवस्था बनानी होगी ताकि देश के युवा उद्यमी छोटे व मंझले उद्योगों के साथ–साथ वैश्विक स्तर पर बड़ी कम्पनियां खड़ी कर सकें।

चौथा महत्त्वपूर्ण विषय है कि हमारे युवा **वैज्ञानिक युवा** बनें। अगर हम दुनिया के अमीर देशों की अर्थ व्यवस्था का अध्ययन करें तो ध्यान में आता है कि उनकी मजबूत अर्थव्यवस्था के पीछे धन की शक्ति नहीं बल्कि ज्ञान की शक्ति है। नोबेल पुरस्कार प्राप्त अर्थशास्त्री रॉबर्ट सोरो ने एक अध्ययन में बताया कि अमरीका की 1900 से 1950 तक की वृद्धि का 7/8 भाग ज्ञान के विकास और प्रसार से आया जबकि पूंजी की वृद्धि में हिस्सेदारी 1/8 ही थी। एक अन्य अर्थशास्त्री डेनिसन ने अपने शोध में यह निष्कर्ष निकाला है कि 1929 से 1982 तक अमरीका के विकास का 94 प्रतिशत हिस्सा ज्ञान, शोध और उसके प्रसार से आया है जबकि 6 प्रतिशत भागीदारी पूंजी की रही हैं। आज भी अमरीका की कमाई का 60 प्रतिशत हिस्सा सिर्फ उनके द्वारा किए गए शोध के पेंटेंट से ही आता है। अगर हम इसकी तुलना भारत से करें तो शोध की हिस्सेदारी नगण्य ही है। इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत के युवाओं में बुद्धि और मेधा की कमी है। भारत तो ज्ञान और बुद्धि के कारण ही हजारों वर्ष तक समृद्ध और शक्तिशाली देश बना रहा है। आज भी पूरे विश्व

में भारतीय मेधा की गूंज सुनाई दे रही है। विश्व की सबसे बड़ी महाशक्ति माने जाने वाले अमरीका में भी मीडिया, शोध संस्थान, थिंक टैंक और नीतिगत संस्थान, राजनीति, औद्योगिक घरानों सहित सामाजिक जीवन के हर क्षेत्र में भारतीय सर्वोच्च पदों तक पहुंच रहे हैं। परंतु दुर्भाग्य यह है कि इतनी मेधा होते हुए भी भारत इस दिशा में पिछड़ गया है क्योंकि पिछले कुछ समय से देश में शोध कार्यों को अपेक्षित प्राथमिकता नहीं मिल रही। भारत के सकल घरेलू उत्पाद का मात्र 0.8 प्रतिशत ही शोध कार्यों में खर्च हो रहा है। जबकि ज्यादातर विकसित देशों में यह हिस्सेदारी 3 प्रतिशत के लगभग है। हमें भी इस खर्च को 3 प्रतिशत तक बढ़ाना होगा। शोध के लिए देश में ना सिर्फ अच्छे संस्थान बनाने होंगे बल्कि शोध के लिए उपयुक्त वातावरण भी तैयार करना होगा। अगर हम देश में वैज्ञानिक युवाओं की एक बड़ी श्रृंखला खड़ी कर सकें तो देश तकनीकी और आर्थिक क्षेत्र में एक बड़ी शक्ति बनकर उभरेगा।

पांचवां व सबसे महत्वपूर्ण विषय है कि हमारे युवा **राष्ट्रभक्त युवा** बनें। स्वामी विवेकानंदजी का संदेश था कि सभी देवी–देवताओं को छोड़कर कुछ वर्षों के लिए देश के युवाओं को सिर्फ भारत माता की आराधना करनी चाहिए। इस विचार को एक बार फिर से देश के युवाओं के मन में ले जाना होगा तथा उनके मन में देश के गरीब, अनपढ़ और पिछड़े वर्ग के प्रति प्रेम और संवेदना पैदा करनी होगी ताकि वह उनके दुःख और पीड़ा को अपना समझकर उसका निवारण करने के लिए तत्पर हों। देशभक्ति और स्वाभिमान से युक्त युवा पीढ़ी को यह विचार देना होगा कि भारत की समस्याओं का उत्तर पश्चिम से नहीं मिल सकता, हमें स्वयं ही इसे ढूंढना होगा। हमें भारत की आवश्यकताओं के अनुरूप विकास का नया मॉडल विकसित करना होगा तथा इसके लिए हमें उधर का चिंतन छोड़कर मूल चिंतन की ओर लौटना होगा। अगर हम देश के लिए विकास का एक नया रास्ता बनाने में सफल हो गए तो निश्चित ही भारत एक बार फिर से विश्व में अपनी पुरानी प्रतिष्ठा हासिल करेगा। भारत का यह उत्थान न सिर्फ भारत के लिए आवश्यक है बल्कि यह संपूर्ण मानवता के लिए उतना ही आवश्यक है। इसलिए भारत के युवाओं पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है, उन्हें स्वामी विवेकानंद तथा भारत के करोड़ों लोगों की आंखों में पल रहे समर्थ और शक्तिशाली भारत के स्वप्न को साकार करना होगा।

(लेखक सैंटर फोर ईकोनोमिक पॉलिसी रिसर्च के निदेशक हैं)

अगर धन दूसरों की भलाई करने में मदद करे, तो इसका कुछ मूल्य है, अन्यथा, यह सिर्फ बुराई का एक ढेर है, और इससे जितना जल्दी छुटकारा मिल जाए उतना बेहतर है।

(स्वामी विवेकानंद)

इस बैठक में वक्ताओं का मानना भी था कि 'हिंदू अर्थशास्त्र' का मॉडल अपनाकर ही वर्तमान विश्व विसंगतियों से पार पा सकता है। मोटे तौर पर सभी वक्ताओं का यह मानना था कि अर्थशास्त्र का वर्तमान वैश्विक ढांचा बिलकुल और पूरी तरह असफल होकर चरमरा सा गया है। अतिशय लाभ कमाने की लालसा पर आधारित वर्तमान मॉडल ही दुनिया भर में फैले असंतोष और रक्त बहाकर की जाने वाली क्रांति का एकमात्र कारण है। इस कारण ही दुनिया भर में हाहाकार मचा हुआ है।

मोटे तौर पर विश्व भर में अर्थव्यवस्था के दो पश्चिमी मॉडल की चर्चा की जाती है। एक पूंजीवादी और दूसरा साम्यवादी। इन्ही दोनों मॉडल के आधार पर अभी विश्व व्यवस्था की नींव है। जिसमें पूंजी को ही सभी समस्या की जड़ मानने वाले साम्यवाद तो अपने ही भार से चरमरा कर लगभग खत्म होने की कगार पर ही है। सोवियत रूस के विघटन के बाद तो खास कर देश–दुनिया का कोई भी हिस्सा ऐसा नहीं बचा जहां हम यह कह सकते हैं कि यह व्यवस्था जीवित है। तेजी से विकसित हो रहा चीन अगर खुद को साम्यवादी कहता भी है तो जाहिर है केवल अपनी सत्ता कायम रहने के लिए। अन्यथा जिस तेजी से उसने पूंजीवाद को अपनाया और दुनिया भर की पूंजी को खुद के यहां इकट्ठा कर ही अपने विकास की नींव रखी वह सबके सामने ही है। प्रेक्षकों का यह भी मानना है कि जिस दिन चीन अपने निष्ठुर खोल से बाहर निकल जरा भी नवाचार को प्रोत्साहन देना शुरू करेगा बस शायद उसी दिन रूस की तरह ही उसका भी खंड–खंड हो जाना निश्चित है। इसीलिए रूस के अनुभवों से डरे हुए चीन ने खुद को आज भी बंद कमरे में रखा हुआ है। आज भी हम चीन के बारे में उतना ही जान पाए हैं जितना हमें वो जानने दे रहा है। आप केवल उसके बीजिंग या शंघाई जैसे कुछ चमकीले शहर को देख पाते हैं या फिर कुछ साल पहले ही उसके कब्जे में आए उस हांगकांग को, जहां संयोग से यह सम्मलेन हुआ था। और वही देखकर हम उसकी सफलता पर चमत्कृत होते रहते हैं। बीजिंग को ही दिखाकर दुनिया में अपने कथित विकास का सिक्का जमाने की चाह में पिछले ओलंपिक के दौरान ही चीन ने किस तरह से अपने नागरिकों को, मजदूरों आदि को शहर से निर्ममतापूर्वक बाहर किया, यह हमने देखा ही है।

तो जहां विकास का साम्यवादी मॉडल लगभग अब मृतप्राय है वहीं दानवाकार पूंजीवाद पर आधारित शोषणकारी व्यवस्था, जन–जंगल–जमीन का बेदर्दी से दोहन कर मुट्ठी भर लोगों के लिए खड़ी की गई अमीरी, धरती का सीना चाक कर एक ही पीढ़ी में जमीन के अंदर का सारा खनिज निकाल लेने की जिद, पर्यावरण को बेतरह क्षति पहुंचाकर भी, लूट–खसोटकर भी हासिल किए हुए संपन्नता के बावजूद आज जिस तरह पश्चिमी देशों में भी असंतोष पैदा हो रहा है, जिस तरह अमेरिका के वाल स्ट्रीट पर कब्जा करने लोग पहुंच रहे हैं, जिस तरह दुनिया भर में पर्यावरण के नाम पर उबल पड़े हैं, जैसे एक के बाद एक अमेरिकन बैंक दिवालिया हुए थे, जैसे यूरोप में आर्थिक मंदी की छाया पड़ी है, जैसे दुनिया भर में अपने डॉलर का सिक्का जमाने वाले अमेरिका के खुद की साख स्टैंडर्ड एंड पूअर जैसी एजेंसियों ने कुछ साल पहले घटाई है उससे तो यही लग रहा है कि अपनी समूची धरती को नर्क बनाकर भी कथित पहली दुनिया के यह लोग अपने मुट्ठी भर अमीरों तक के लिए भी एक सुरक्षित भविष्य का निर्माण नहीं कर पाए हैं। ऐसे हालात में विकास के किसी वैकल्पिक मॉडल की तलाश, सस्टेनेबल डेवलपमेंट की किसी व्यवस्था की खोज होना लाजिमी ही है।

लेकिन सवाल है कि विकल्प क्या हो? जिस हिंदू अर्थशास्त्र की बात ऊपर कही गई है वह है क्या? पंडित दीनदयाल उपाध्याय के आर्थिक चिंतन में इन सभी बातों का जवाब सार रूप में वर्णित है। चूंकि कोई एक 'संप्रदाय' नहीं होने के कारण समूचे हिंदू जगत का न तो कोई एक ग्रंथ है और न ही कोई एक प्रणाली। तो आखिर हम किसे हिंदू मॉडल माने? ऐसे में शायद शास्त्रों में वर्णित अलग–अलग विचारों का एक समुच्चय बनाकर किसी नए मार्ग की तलाश हमें करनी होगी। ऐसी ही एक कोशिश पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने की थी। उन्होंने विशुद्ध भारतीय धारणा पर आधारित एक नया मॉडल एकात्म मानववाद के रूप में दिया। हालांकि असमय उनकी भी मृत्यु हो जाने के कारण वह विचार भी उस रूप में सामने नहीं आ पाया जैसा शायद पंडितजी ने सोचा रहा होगा। फिर भी इतना कहना उपयुक्त होगा कि वह भारतीय मानव की संपूर्ण प्रकृति का अध्ययन कर उसके अनुरूप व्यवस्था किए जाने का आग्रह करता है।

उदाहरणतः जैसे भारत में अर्थशास्त्र के प्रणेता माने जाने वाले चाणक्य की बात करें। वे कोई अर्थशास्त्री नहीं थे। बल्कि एक कुशल प्रशासक, रणनीतिकार, योद्धा, गुरू आदि की अलग–अलग भूमिका में उन्हें हम पाते हैं। यानी उन्होंने शासन की विविध अनुषंगों का विस्तृत अध्ययन और प्रयोग करते हुए उसके बाद 'अर्थ' के

बारे में भी चिंतन किया। तो मानव की संपूर्ण प्रकृति, उसका स्वभाव, आचरण, उनकी जरूरतें आदि को संपूर्णता में जानकर ही सबके भलाई की इच्छा रखते हुए ही हम किसी कल्याणकारी मॉडल की चर्चा कर सकते हैं। जाहिर है यह बिना आध्यात्मिकता के तो संभव नहीं होगा।

मोटे तौर पर वर्तमान अर्थव्यवस्था का आधार पश्चिम की एक थ्योरी (थ्योरी ऑफ परकोलेशन) पर आधारित है। इसे 'रिसने का सिद्धांत' कहते हैं। जिसके अनुसार आप अगर पूंजी को एक जगह केंद्रीकृत कर देंगे तो वह रिसकर नीचे तक भी जाएगा। इसे हम समझने के लिहाज से 'पानी का मॉडल' कह सकते हैं, जो रिसकर नीचे तक जाता है। लेकिन भारतीय सोच चाहे वह अध्यात्म की हो या अर्थव्यवस्था की, इसके विपरीत 'आग' के मॉडल की चर्चा करता है। ऐसी ऊर्जा या संसाधन जो नीचे से ऊपर की ओर जाए। जैसे योग में ऊर्जा का प्रवाह उर्ध्वमुख करने पर, नीचे मूलाधार से सहस्त्रार की ओर जाकर कुण्डलिनी जागृत करने की बात कही जाती है। कबीर ने भी जिसे 'ओलती के पानी बरेरी तक जाए' कहा है वैसे ही सम्यक विकास रूपी कुण्डलिनी के लिए जारी यह है कि आप संसाधन को ऊपर इकट्ठा कर नीचे रिसने रहने का इंतजार करने के बजाय नीचे से उत्पन्न कर उसे ऊपर तक ले जाने का श्रमसाध्य लेकिन सस्टेनेबल कार्य संपन्न करें। इसे ही अर्थव्यवस्था का आध्यात्मिक मॉडल कहा जा सकता है।

सरल शब्दों में कहें तो हर तरह के विकास का लाभार्थी अगर समाज के सबसे नीचे के तबके को सबसे पहले बनाने का सोचा जाएगा, उन्ही को ध्यान में रखकर, उन्ही को संपन्न बनाने की मंशा से अगर कार्य किया जाएगा तो वही विकास सही अर्थों में टिकाऊ और उपयोगी होगा। संपत्ति के कुछ चुनिंदा टापू बनाकर, अपने गरीब नागरिकों को गरीबी में ही रखकर किसी स्थायी विकास की कल्पना नहीं की जा सकती।

सही अर्थों में आज मानव समाज की सबसे बड़ी चुनौती 'असमानता' है। लेकिन उससे निपटने के लिए किसी साम्यवादी तौर तरीके की जरूरत नहीं है। लेकिन उपरोक्त प्रणाली से समूचे समाज को ही कुंठित बना देने वाले असमानता के इस विकराल दानव से आपको पार पाना ही होगा। आपको गांधी–विनोबा–दीनदयाल के इसी आध्यात्मिक ग्राम स्वराज पर ध्यान देना होगा जो गांवों के विकास से शुरू कर क्रमशः ऊपर तक विकास की राह कैसे बने, इसकी चिंता किया करते थे। अगर अर्थव्यवस्था के लिए कोई मानवीय मॉडल आपको चाहिए तो समूची दुनिया को अपना परिवार समझना ही होगा, देश और दुनिया की पीड़ा और अभाव से खुद को संबद्ध कर लेने की सुमति ही हिंदू अर्थव्यवस्था का आधार हो सकता है। तुलसी के यह शब्द हमारे मार्गदर्शक हो सकते हैं 'जहां सुमति तंह संपत्ति नाना, जहां कुमति तंह विपत्ति निदाना।' पंडित दीनदयाल उपाध्याय जी का संपूर्ण जीवन भी समाज को यही संदेश देता है।

आज भी देश–समाज के सामने दो ही विकल्प है। हमें या तो काफी आसान लेकिन भ्रष्ट, उस पानी के मॉडल को अपनाकर दारिद्रय के समुद्र में समृद्धि के कुछ टापू बनाकर उसे ही 'विकास' का नाम देना है, जैसा कि हम दे भी रहे हैं। या फिर दीनदयाल का कष्टसाध्य–कंटकाकीर्ण लेकिन आर्थिक न्याय का मॉडल अपनाकर इतिहास रचना है, यह तय करने का भार नियति ने हम पर ही छोड़ रखा है। ऐसा चयन करते समय हमें यह बार–बार ध्यान रखना है कि 'चीन' हमारे लिए उदाहरण नहीं बल्कि 'सबक' होना चाहिए (दुर्भाग्य से हममें से अनेक उसे आदर्श मान बैठे हैं)। जिस तरह केवल सत्ता पाने और उसे बनाए रखने के लिए साम्यवाद का राग अलापने और शेष समय यूरोपीय शोषणकारी मॉडल को अपनाने के दोगलेपन को ही चीन 'वर्ग संघर्ष' समझाने लगा है, वैसा दीनदयाल के वंशज नहीं करें, यही चिंता आज के भारतीय समय की सबसे बड़ी चिंता है। दीनदयाल की विचार थाती वहां तक न पहुंचे जहां दुनिया माओ से जिनपिंग तक पहुंच चुकी है या जैसे आज भारत गांधी से राहुल तक, लोहिया से मुलायम तक, या फिर जेपी से तेजस्वी तक पहुंच चुका है। पंडितजी को किसी भी तरह की श्रद्धांजलि देने से ज्यादा जरूरत उनके दिखाए रास्ते पर ईमानदारी से चलने की है, या ये कहें कि उनके लिए यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी। 'मुंह में राम बगल में जापान' कम से कम दीनदयाल का दर्शन तो नहीं हो सकता।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार एवं 'दीप कमल' पत्रिका के संपादक हैं)

Aedco
Developers Pvt. Ltd.

30 years of success

INDUSTRIAL PLOTS

to unfold the opportunities

Saraswati Udyogpuram

AT GAGOL ROAD, OPP. AIR STRIP, MEERUT.

DESIGNER ENTANCE GATE · 80 FT. WIDE DIVIDER ROAD · 24 HOURS SECUYRITY
BOUNDED CAMPUS · LUSH GREEN PARKS · 24 HOUR ELECTRICITY SUPPLY
24 HOUR WATER SUPPLY · PROPER SEWERAGE SYSTEM

For More Details : 9837071053, 9927800965

H.O. : Saraswati Plaza, Shivaji Road, Meerut. Ph. : 0121-2667788

www.aedco

भारतीय मूल्य - शाश्वत मूल्य

— व्यालोक पाठक

हम भारतीय समाज के बारे में जब भी बात करते हैं, तो सबसे पहले यह जान लें कि इसके बारे में कोई भी 'सपाटबयानी' (स्वीपिंग स्टेटमेंट) या सामान्यीकृत धारणा बनाना ही गलत होगा। इसकी वजह यह है कि भारत दरअसल सभ्यताओं का 'मेल्टिंग पॉट' भले हो, लेकिन इसके मूल्य, इसकी धारणाएं शाश्वत हैं। रवींद्रनाथ ठाकुर भारतवर्ष की इसी खासियत को लक्ष्य कर कहते हैं, "हेथाय आर्य, हेथा अनार्य.....पाठान, मोगल एक देहे होलो लीन।"

भारतीय मूल्यों को शाश्वत कहना इसलिए पड़ता है कि हमारे ऋषियों और ऋषिकाओं ने जो सूत्र जीवन के संबंध में दिए हैं, वह समय की विशाल गंगा में कसौटी पर घिसकर और भी सिद्ध हुए हैं, हमें सत्य के और भी करीब ले जाने लायक हुए हैं। उदाहरण के लिए, इस मंत्र को देखें—

संगच्छद्धवं संवदध्वं, सं वो मनांसि जानताम्,
देवा भागं यथा पूर्व संजानाना उपासते।।

(ऋग्वेद 10.191.2)

अर्थात् पग से पग मिलाकर चलो, स्वर से स्वर मिलाकर बोलो, तुम्हारे मन में समान बोध हो। पूर्वकाल में जैसे देवताओं ने अपना भाग प्राप्त किया, सम्मिलित बुद्धि से कार्य करने वाले उसी प्रकार अपना–अपना अभीष्ट प्राप्त करते हैं। अब इस जीवन–दर्शन में भले ही चाहे समय की राख कितनी भी पड़े, लेकिन यह हरेक बार फीनिक्स की तरह उठ कर खड़ा हो ही जाएगा, क्योंकि इसमें मनुष्यता की बात है, समग्र भविष्य की बात है।

बात तो यह सीधी सी है कि कोई भी समाज अपने समय के साथ नहीं चलने पर सड़ने लगता है। पानी और समाज का रवैया एक जैसा ही होता है, समय बदलने के साथ ही उसे भी बदलना होता है। समय बदलने के साथ ही अनेक परंपराएं और मान्यताएं बदल जाती हैं। नहीं बदलने पर उस समाज में कट्टरता फैल जाती है। भारतीय मान्यताएं और मूल्य चूंकि समय के साथ बदलती रही हैं, वह सतत् परिवर्तनशील रही हैं, इसलिए वह सनातन भी हैं। हमारे यहां सत्य को लेकर कभी न तो गर्व किया गया है, न ही 'अपने' सत्य को एकमात्र बताकर उसे ही ब्रह्मांड का अखंड सत्य बताया गया है। हमारे ऋषियों ने तो बहुत पहले घोषणा कर दी थी– 'एकं सत, विप्रा बहुधा वदंति', अर्थात् सत्य एक है, विद्वान उसे बहुतेरे ढंग से कहते हैं। यह लेकिन सचमुच खोज का विषय है कि एकांत में चिंतन–मनन करने वाले हमारे ऋषियों ने जब भी सोचा, तो समग्र मानवता के बारे में सोचा, संपूर्ण विश्व के बारे में ही सोचा। भारतीयता की प्रकृति में ही संपूर्ण विश्व को अपना समझने की सलाहियत है –

"अयं निजः परोवेति, गणना लघु चेतसाम,
उदार चरितानांतु, वसुधैव कुटुंबकम्"।

अर्थात् मेरे–तेरे का भेदभाव छोटे लोग करते हैं। उदार चरित्र वालों के लिए तो पूरी पृथ्वी ही एक परिवार है, एक कुटुंब है।

आज, जिस भूमंडलीकरण की बातें हम सुनते और सोचते हैं, उसे सदियों पहले हमारी भारतीय मनीषा कह चुका है, उस पर मनन कर चुका है। हमारे यहां सकारात्मक बात यह है कि भारत में हमेशा मूल्यों की प्रधानता रही है जिसका जाने–अनजाने संबंध अध्यात्म से रहा है। पहले यही जीवन–मूल्य समाज और व्यक्ति को संचालित करते थे। इसी से पूरा समाज अनुशासित और संयमित रहता था। वे मूल्य आज भी उतने ही खरे हैं। ईमानदारी, सच्चरित्रता, सेवा, साधना, नैतिकता, अस्तेय–आज का भी सच है। भारत की पूजा और इज्जत इसी कारण हो रही है। भौतिकता की आंधी से त्रस्त पश्चिम आज इसीलिए भारत की ओर भागा आ रहा है।

कार्ल मार्क्स ने 19वीं शताब्दी में संग्रहण की मुखालफत की हो, बुर्जुआ और सर्वहारा के बंटवारे को लेकर विश्व में अपने दर्शन की डुगडुगी बजाई हो, लेकिन भारतीय मानस हमेशा ही त्याग और संयम को महत्त्व देता रहा है। साधुओं के वेष में इसीलिए शायद कई बार उचक्के भी हमें ठग ले जाते हैं, लेकिन यह भारतीय चिंतन की अटूट श्रृंखला ही है, जो हमें 'त्याग' के किसी भी रूप को पूजने की शिक्षा देती है:–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुंञ्जीथा, मा गृधः कस्य स्विद्धनम ॥

(ईशावास्योपनिषद)

अर्थात् अखिल ब्रह्माण्ड में जो कुछ जड़–चेतन स्वरूप जगत है, समस्त में ईश्वर व्याप्त है। उस ईश्वर को साथ रखते हुए त्यागपूर्वक भोगते रहो। उसमें आसक्त नहीं हो, क्योंकि धन भोग्य किसका है अर्थात् किसी का भी नहीं। यह राजा से लेकर रंक तक त्यागपूर्वक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देता है। भारत में राजा जनक से राजा हर्ष तक यही प्रेरणा मिलती है। शायद, यही वजह रही है कि यहां सत्ता के शीर्ष पर पहुंचकर भी 'चाणक्य' एक कुटीर में रहते हैं, अपने शिष्य चंद्रगुप्त के महल में नहीं।

भारतीय दर्शन केवल 'स्व' का नहीं है, वह पर का भी है, पूरे विश्व के बारे में उसकी चिंता है। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम' (सारी दुनिया को श्रेष्ठ, सभ्य एवं सुसंस्कृत बनाएंगे) का यह संकल्प भारतीयता के श्रेष्ठ उद्देश्य को व्यक्त करता है। मार्कंडेय पुराण में भी कहा गया है–

'सर्वे भवंतु सुखिनः, सर्वे संतु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यंतु, मा कश्चिद् दुःख माग्भवेत्'।

अर्थात् सभी प्राणी प्रसन्न रहें। किसी भी प्राणी को कोई व्याधि या मानसिक व्यथा न हो। सभी कर्मों से सिद्ध हों। सभी प्राणियों को अपना तथा अपने पुत्रों के हित के समान बर्ताव करें।

अब, जरा वर्तमान विश्व को देखिए। संताप और लड़ाइयों से पीड़ित इस विश्व में क्या इस चिंतन की तोड़ तो छोड़िए, जोड़ का भी कोई चिंतन मिल सकता है क्या? कहने की जरूरत नहीं है कि भारतीय चिंतन के जो मूल्य ऋषि–मुनि हमें दे गए हैं, वह समय की सान पर चढ़कर और प्रखर हुए हैं, और भी सारगर्भित हुए हैं, मूल्यवान ही हुए हैं। भारतीय चिंतन की मौलिकता इसकी शांति, सह–अस्तित्व और सामाजिक संतुलन की अनोखी धारणा में है। यह सोद्देश्य है, निरुद्देश्य नहीं है। यह मानव के मौलिक तौर पर स्वतंत्र होने की तो पक्षधर है, लेकिन उस आजादी पर विवेक का अंकुश भी लगाती है। भारतीय चिंतन में आजादी किसी को न दी जा सकती है, न छीनी जा सकती है।

भारत के पास मूल्यों का एक शाश्वत ढांचा है। भारतीय मनीषा, साधकों और समाज वैज्ञानिकों के हजार वर्षों

की साधना के बाद ही मूल्यों के मोती निकले हैं। इन मोतियों पर कालिख लगाना संभव नहीं है। हां, जीवनक्रम में भले ही भारतीय मूल्यों को भी अनेक कु–सिद्धांतों और दु:खद प्रसंगों के साथ जोड़कर बदनाम करने की साजिश भले चल रही है। यह भारतीय चिंतन की नहीं, मानवीय विडंबना है कि अमृत को विष साबित किया जा रहा है। जरा खुद ही सोच कर देखिए, गंगोत्री से निकली गंगा कितनी स्वच्छ, निर्मल, उज्ज्वल और ऊर्जावान होती है, लेकिन हमने अपने प्रदूषण से उसका पटना या इलाहाबाद में क्या हाल कर दिया है। जिस देश में सदियों की सांस्कृतिक परंपरा है, उस पर गर्व करने के बजाए लोग हीनता से ग्रस्त हैं। वे कभी पश्चिम तो कभी साम्यवादी देशों की नई कुत्सित सांस्कृतिक परंपरा की प्रशंसा करते थकते नहीं है। उनके लिए प्राचीन भारतीय ग्रंथ फुटपाथी साहित्य हैं, जबकि 'दास कैपिटल' अंतिम सत्य। उन्हें यह नहीं दिखता कि भारतीय चिंतन सबको साथ लेकर चलने में, सबको साथ विकसित करने में ही अपने जीवन की सिद्धि मानता है:

ओम् सहनाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।।
ओम् शांतिः शांतिः शांतिः।।

यह शांति मंत्र श्वेताश्वतरोपनिषद से है, जो कृष्ण यजुर्वेद शाखा का उपनिषद् है। इसका भावार्थ है कि हे प्रभु! आप हमारी रक्षा करें, हमारा पोषण करें, हमें शक्ति प्रदान करें, हमारा ज्ञान तेजमयी हो और हम किसी से द्वेष न करें।

सवाल यह है कि क्या भारतीय मूल्य जीतेंगे या पराजित हो जाएंगे? सोचने की बात है कि जैसे–जैसे अपने इतिहास और परंपराओं का हमारा ज्ञान बढ़ रहा है, वैसे–वैसे शाश्वत मूल्यों पर हमारा विश्वास बढ़ना चाहिए था, लेकिन दुर्भाग्य से इसका उल्टा हो रहा है। हमारे जीवन में तात्कालिकता का महत्त्व बढ़ने लगा है। इस क्षणजीवी सभ्यता ने पूरी धरती पर संकट के बीज बो दिए हैं, सभ्यता को घायल कर दिया है। इस चाहत ने मानवीय मूल्यों, सामाजिक–सांस्कृतिक मर्यादाओं को तो ध्वस्त कर ही दिया है, धरती, हवा और पानी को भी भारी नुकसान पहुंचाया है।

हम चाहे जानते हों या नहीं, लेकिन आज की दुनिया देखकर तो यही लगता है कि हमने अपना निजाम अंधकार की ताकतों के नाम कर दिया है। हमें जरूरत है, इस अंधकार से निकलने की, भारतीय शाश्वत मूल्यों को अपनाने की–

'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतं गमय.....'।

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं)

स्वतंत्र होने का साहस करो। जहां तक तुम्हारे विचार जाते हैं वहां तक जाने का साहस करो, और उन्हें अपने जीवन में उतारने का साहस करो।
(स्वामी विवेकानंद)

Development Mantra : Back to the Roots, Our Villages

– K. A. Badarinath

As a young leader and ABVP activist, I was part of a students group that visited several villages in northern parts of Palamoor district in Andhra Pradesh.

Well, one did not realize that this experience during summer break takings students from different colleges to Banala, Balamoor and Lingala provided the first deep insight into plight of our people in rural hamlets.

Somewhere in the subconscious mind, the imprint of these villages without semblance of basic amenities remained with me as I got about to settling down as a media professional covering a host of sectors across business, policy and political spectrum.

I must admit that this experience during hay days as a student activist and ABVP full time worker provided me the inspiration to do something for the villages where nothing much has changed over last 27-years after my first visit in 1988.

"Back to the roots, lets embrace our villages" as tagline, pursuit of a new development model was the template with which a few media professionals and farmers cooperatives collaborated to set up not for profit initiative, India Foundation for Rural Development Studies (Infords) with some modest work put in during last ten-odd years.

This experience only brings to fore how much there's to achieve on development front if we were to truly transform into a rocking world economic powerhouse.

Mahatma Gandhi firmly believed that villages were India's lifelines and unless prosperity spreads to remotest parts of this country, one would not experience the true meaning of attaining freedom from British rule.

It's this very belief and commitment that inspired the late President Abdul Kalam to come up with the concept of "providing urban facilities in rural areas (PURA)" during a Presidential address before both houses of Parliament sometime back.

This line of thinking also moved then Prime Minister Atal Bihari Vajpayee to bring in "Antyodaya" to make development inclusive in economic model of the earlier NDA government.

The very commitment to rural India must have pushed the Narendra Modi government to take up the campaign for adopting five villages by every Parliament member as the "development mantra".

But, government schemes as they are, may not translate and deliver the results as per milestones set by political leadership from time to time. Youth and students may have to take the lead on development front.

One suggestion is that youth and students should together to begin adopting villages and make them wholesome economically self-sustaining units of development pyramid.

Let's say we come up with a paradigm shift in our youth and student activism and launch a campaign wherein students from every university adopt at least five villages.

Given the pathetic state of affairs in rural India, youth with their brimming energy can contribute through innovations and new ideas to rediscover our roots, villages.

Shunning them and moving to metros has been norm of the day for education, work and growth opportunities. But, reversing this trend and moving back to villages, creating workspaces there is the only way out to make India a true global power.

Over 6.25 lakh villages across 600 districts in as many agro-climatic, socio-economic conditions should become our workspaces to achieve global leadership in literal sense.

Without spread of economic prosperity to our villages and empowering the rural masses, country's claim of a reigning tiger does not hold much water notwithstanding the fact that India has turned $ three trillion economy, industrial enterprises have become global entities, stock markets are on bull run, foreign exchange and commodities markets continue to be avenues to make money.

It's not that we would be the first ones to make Indian village clusters of our "karma bhoomi". With experience, I can say that putting together a bankable rural project with technological innovations is the challenge and resources would not be a limiting factor.

Leaving a cushy job in London at IBM, Lucknow-based IIM graduate Shuvajit Payne chose Waifad village in Wardha district of Maharastra as his work centre. Several of his colleagues thought he lost his sense of direction to leave luxuries of London and head to Waifad.

Payne with some support from SBI commenced work amongst 50-odd village youth providing them with computer skills, instilling confidence, getting across language barriers and offering career counseling sessions in a village barely with few hours of electricity. Dildar Khan Pathan, his student who hardly had formal education today has turned into a software developer for educational material apps.

If Khan can do it, so is the case with millions of our rural youth who can make it to top of the World with some support from more fortunate lot like us.

Shuvajit Payne limited himself not just to education, he moved on to rural projects, optimum utilization of our meagre resources to make development projects bankable and decent returns.

Take the case of Varun Sharma, a post-graduate from Azim Premji University in Bengaluru who was singularly responsible for bringing electricity, education and economic empowerment to Suaba village in Odisha tucked away in rocky eastern ghats.

An alumnus of National Institute of Design, computer graduate and a trained bharatanatyam dancer, Shalini Krishnan's work in Kankia village in Ganjam district of Odisha is worth looking at. After having worked at Cisco, Adobe and Honeywell, Shalini headed for Kankia village to train youngsters to take on the world.

Nupur Ghuliyani, a chartered accountant by training and lucrative job at independent consultancy, Ernst & Young headed for Kherwada block in Rajasthan to develop an alternative energy project involving biomass briquettes.

There are score of examples that can provide us the inspiration to get back tot our roots, the villages. With Nehruvian era, centralized Planning Commission dismantled, new development models for our village clusters have to be evolved and developed with our own resources and innovation.

Perhaps, youth for villages and students for rural India would not be just a slogan but a movement and silent revolution we all would be part of.

(Writer is an Associate Editor in Financial Chronicle)

INDIA'S ROLE AS A WORLD LEADER IN PROTECTINGTRADITIONAL SCIENTIFIC KNOWLEDGE

– Sangeeta Godbole

Traditional knowledge of ancient societies - victim of commercial exploitation: Not only India but ancient societies across continents have been victims of unfair patents and commercial exploitation. Several patents have wrongly been granted, particularly in the US, on medicinal plants which have been used for centuries by tribes of Africa, South America and other geographies. Huge genetic resources have been transferred to rich countries, at times without any idea of the potential profits that are going to be made out of them. Not only that profits would be made, but communities holding such knowledge for centuries, would at some point be forbidden from using it themselves! There has been a consistent demand by societies/countries like India, for protection of indigenous knowledge against unfair use under the global IPR regime. There is an on-going huge tug of war between rich countries who can technologically exploit genetic resources and developing countries who hold such resources.

Traditional Knowledge Digital Library (TKDL) comes to rescue: In face of such attack, who would believe that a governmental agency has thwarted 276 (and more coming in) attempts to get patents on Indian traditional medicines? Government agencies are better known for their corruption, inefficiency, mis-management, lethargy and so on. But the Traditional Knowledge Digital Library (TKDL), due to which this work happened, is an effort which defies all these stereo types which hound government.

Pioneered by Dr. Raghunath Mashelkar, TKDL uses traditional knowledge in the form of existing literature related to Ayurveda, Unani, Siddha and Yoga. Ancient Indan texts which contain such knowledge and which are available in public domain are documented in digitized format. Jointly managed by Council for Scientific and Industrial Research (CSIR) and Dept of Ayurveda Unani Sidhha and Homeopathy (AYUSH), it has digitized 2.92 lakh medicinal formulations from 150 ancient Indian books in five international languages. As a result, claims for patents based on Indian medicinal systems made in international patent offices relating to Asthma, cancer, liver disease, skin problems and many other diseases have been withdrawn/disallowed.

At present access of TKDL is available to nine International Patent Offices (Europe, United State, Japan, United Kingdom, Canada, Germany, Australia, and Chile). TKDL technology has created a unique mechanism for a Sanskrit verse to be read in languages like German, Japanese, English, Spanish and French by an examiner at any International Patent Office on his computer screen.

Need to protect traditional knowledge from unfair means of commercialization : Traditional Knowledge (TK) and its protection is an issue particularly relevant for ancient societies like India. India is a vast repository of knowledge gained over centuries in various fields like nutrition, medicine, metallurgy, architecture, hydraulics, mathematics and so on. Many fields like health (particularly Ayurveda) have

survived strongly for centuries and are a part of our everyday lives even today. Realization that India's TK is being (mis)appropriated by commercial organizations in rich countries came with a bang with the haldi and basmati patents granted by the US Patent and Trademarks Office(USTPO) and neem patent granted by European Patent Office(EPO) respectively. Haldi was the first case in which a Third World country succeeded in its objection to a foreign patent on the grounds that it was based on traditional knowledge known to the country for generations. While, we managed to get the patents revoked, many such unfair patent claims – (where there has been prior use in India and therefore nothing innovative about the claim) have already been granted outside India.

India- global leader in protecting its knowledge: India's pioneering effort is now being emulated in various countries. TKDL has provided India a global leadership position in the area of Traditional Knowledge & Intellectual Property Rights. Some countries have adopted India's model in establishing similar systems for themselves. It serves as a Model for other countries to protect their traditional knowledge. It provides assistance to other countries to build their own knowledge repository among which some are China, Brazil, Republic of South Korea, Thailand, South Africa, Mongolia, Cambodia, Nigeria, African Regional Industrial Property office, SAARC member states.

International recognition and appreciation: TKDL initiative has also been fully recognized by international organizations such as WIPO, WHO, WTO, UNESCO, etc. for documentation of traditional medicine systems and Intangible Cultural Heritage. International and national media have done extensive coverage on TKDL and the project has been covered by reputed international magazines such as Time, Nature, Washington Post, Wall Street Journal, BBC and several other electronic channels and the print media.

Need to codify hitherto uncodified knowledge: However in this effort, only knowledge already codified in our ancient books has been used. The need is now to codify and then digitize existing community based knowledge. It need not be coveted medicinal knowledge closely guarded by vanavasi communities. There is a need to systematically document all that we know – foods with high nutrition content, effect of seasons on plant growth, reading weather through behaviour of birds/ animals and so on.

Advantages of such codification: One gain of such codification would be to stop (mis)appropriation of Indian TK by commercial organizations. Although TKDL has taken a great leap forward in this area, it essentially digitizes already codified knowledge. There is still a huge body of indigenous un-codified knowledge. Urban communities have long lost touch with traditional knowledge, but Vanavasi communities would be still holding a huge part of it.

Another benefit would be to mainstream such knowledge so that the huge (and slated to hugely grow) urban population can also use this knowledge. The urban communities have more or less lost touch with TK and are almost solely dependent on what is available through rich country resources. Mainstreaming TK still available with vanavasi communities will help commercial benefits of such ideas to flow back to vanavasi areas from urban areas. E.g. a particular leafy vegetable is known to be highly nutritious in a particular season. If its nutritive values are popularized, consumption in urban areas and therefore growing in vanavasi areas would increase. This would move profits from urban to vanavasi areas.

The battle for protecting, enhancing and nurturing traditional knowledge has been won in the field of health, but the war is far from over.

(Writer is an ex-full time worker of ABVP & IRS officer of 1989 batch)

LOHCHAB

www.lohchabgroup.com

We wish you

Happy New Year of 2016

and invite you to make your

next vehicle purchase from :

Mahindra Rise.

LOHCHAB MAHINDRA

HONDA

LOHCHAB HONDA

First Choice

LOHCHAB FIRST CHOICE

LOHCHAB MAHINDRA TRUCK & BUS DIVISION

Ground Floor, Rohtak Tower, Delhi Bye-Pass,
Rohtak, Haryana-124001
M. : 8059888806, 8059888818 , 8684888819

Dev Colony, Shahidi Park, Bahadurgarh Road, Jhajjar-124103
M. : 8059888847

Near Gauriyya Tourist Complex, Delhi Rohtak Road,
Village Sankhol, Bahadurgarh
M. : 8199998119,8199998104

LIFE WITH DIGNITY
IS THAT TOO MUCH TO ASK FOR ?

– Monika Arora

I salute the ordinary woman. She gets up early, cooks for her family, packs food for her children and her husband. Thereafter, if she works outside, she goes by Public Transport and does not want to be touched or mould or leered on her way. At work she wants to be treated with dignity. In the evening she comes home tired but has to do all the domestic chores herself. She wants to be respected by her husband and does not want to be hit or abused. She deserves to be safe at home and outside. She deserves a life of dignity. Is that too much what she is asking.

Question remains: How much freedom is to be given to a woman. The range of this freedom oscillates like a pendulum between a woman clad in burqa and seeing the sky through its net. Cannot breath in open air. Cannot venture out without a man. On the other side, we have the image of a Western Woman who says "meri marzi" – many of whom have revolted against the family system, the idea of having children, any kind of bondage. Betty Frieden, the feminist writer wrote in "The Feminine Mystique" that after breaking all the chains, the woman has moved forward. However, the same writer after a few years in "The Second Stage" described that the woman had moved forward but had left behind broken homes, broken lives and a world without a companion and without peace.

Woman in the West got right to vote much later than in India. Woman in the USA got right to vote in 1920, in Britain in 1928, in Switzerland in 1971. They were not even considered as "person" in Canada until a long time. In the National Referandom of 1959, the men in Switzerland said "NO" to right to vote for women. The Roman Christian Vatican State which is akin to Kingdom of God still does not give right to vote to women.

However in Bharat the idea of woman is the idea of mother, shakti, janani. Inspiration is Rani Laxmi Bai who rode the Horse with a child on her back, a sword in her hand, fighting the Britishers. Hence women of Bharat know their responsibility of the house and family on the one hand and duties towards society on the other. Vivekananda stated that in the West the idea of woman was that of a wife but in Bharat the idea of woman was that of a mother.

India is a land where it is believed that Gods reside where women are worshipped. However 16/12/2012 - Nirbhaya rape case shook the entire country—men & women. The issue of sexual assault/ rape came in public domain. The Tsunami of youth – men and women, boys and girls brought about changes even in law. Due to unprecedented and overwhelming response to Justice J.S. Verma committee inviting suggestions to the existing laws- Indian Penal Code, Code of Criminal Procedure , Indian Evidence Act were amended. However, sexual assaults and rapes did not stop. Efficient, fair and speedy justice is still a far cry. However, this young vibrant India with more than 60% of population comprising of youth has given a wakeup call that it will not take things lying down. India has to change. The institutions have to be more responsive. But merely legal reforms will not help. Social reforms wherein there is no discrimination between a boy child and a girl child, dowry problem, participation of women in decision making process in the house, in sharing of responsibility of women by men has to go side by side.

Women require equal opportunity.

Kalpana Chawla(Astronaut), Mary Kom (Boxing Champion), Fathima Beevi (First Woman Supreme Court Judge in Asia), Kiran Bedi (1st IPS Officer), Indira Nooyi (President of Pepsico), Nirupama Rao (India's foreign Secretary) are only a few names to demonstrate that the globe becomes a small canvas to paint if equal opportunity and encouragement is given.

Hence, the present day woman neither wants to be put on the pedestrial of Devi, nor wants to be hit, abused and degraded like a doormat. What she is asking for is a life with dignity - **is that too much to ask for.**

(Writer is an advocate in Supreme Court of India)

Cultural Nationalism : Basic Premise of India

– Sandeep Mahapatra

Nationalism means many thing to many people, some may say that cheering for the Indian cricket team is an expression of nationalism for others celebrating 15th August, 26th January is an expression of nationalism, for some people it could be extending a helping hand at times of disasters, natural or manmade. The list could go on as to how one understands and perceives "nationalism". There is another view that considers nationalism to be jingoistic, blind faith in the country etc., an extreme view also persists in our country that goes on the line that there are many nationalities in India and therefore the concept of a universal "nationalism" is flawed. However, the basis of such interpretation, perception or understanding flows from a perspective that sees our country only as a geographic entity and treats each state as nothing more than a sub-set of the larger entity without realizing that long before the present day modern state came into being, India has been a homogenous entity whose fountain head has been culture and not politics that has characterized India for ages till date.

Thus its culture that binds us all together and acts as a unifying force and is the basic premise that defines our nation and nationalism that best defines us is cultural rather than any other form of understanding that is canvassed, on the basis of ideological moorings of the person so canvassing the idea. As a country, we have been subjected to various rules by various dynasties or being colonized bythe British for hundreds of years but none of these subjugation were able to obliterate our cultural ethos; an identity that has stood the test of time. Therefore even if we may be speaking various languages, may be following different food habits still cultural affinities is a common thread that bind us all. Just to give an example river Ganges is equally sacred for someone from the South or North or Eastern or Western part of India. Likewise various festivals are celebrated all over the country to mark a common occasion, mostly related to harvesting or such events. This is what defines how we identify ourselves with the Nation and there cannot be any denial that we have a shred identity in so far as culture is concerned.

However, in today's time efforts are being made by those who never considered India as a single nation, to portray and project cultural nationalism in negative light to argue that it's nothing but a "narrow view" of nationalism. When confronted as to what "nationalism" mean to them, the answer varies from (a) it can be anything but cultural (b) there is no need to define the term and let everyone have their own definition, (c) there cannot be any uniform exposition of the term etc. etc. Another set of contrarians contend that "cultural nationalism" encompasses a narrow world view revolving around "Hindutva" which according to them puts a premium on supremacy of one particular faith i.e. Hindus over all others. Such misgivings are belied by the fact that Hinduism or for that matter Hindus have been the singularly most assimilative thought process in action. Be it giving shelter to the persecuted Persians hundreds of years back or giving space to adherents of other faith who came as invaders but settled down in this country and assimilated without any "crusade" or "jihad".

Furthermore, over the years the adherents of different faiths molded their thought process attuned to the cultural moorings of the country, of their own volition, while maintaining their own identity, only showing that political or religious identity gets assimilated with the Indian ethos and culture for the simple reason that it's all encompassing. This in essence defines our nation, which is, sadly, overlooked by those who harbor a different view and thereby bracketing 'cultural nationalism' in narrow confines.

Coming to the question of "Hinduism" being an exclusivist concept, one is reminded of the judgment of the Supreme Court twenty years back where while expounding on this term, it was held that it's a way of life and celebrates plurality thereby putting a judicial stamp of approval that Hindusim or Hindutva are all inclusive and the nay-Sayers are wrong in propounding an altogether different view point just for the sake of it. Thus there is an authoritative pronouncement on this aspect, which till date has not been negated, and belies the critics of cultural nationalism.

Nationalism indeed remains the most empowering sense of identity that has been ever experienced and expressed in the human history.If it connotes self-imagination of people, settling in a specific spatial setting, as a unified political community, Indian nationhood is based on geo-cultural premise which has got its evolutional underpinning from Hindu way of life.

Culture is not a tangible object. It is very subtle but it has a profound imprint on human activity.Indian culture has been evolving since the ancient period with utmost sense of sensitivity, creativity and constructive vision. The rationale and application of this value system is documented in the epics and scriptures by the super perceptive minds (Rishis) who have a deep sense of embeddedness to this land and consciousness of its interrelationship with the larger universe. There is, therefore, no scope for exclusivist thought or tendency in the cultural imagination of Indian nationalism.

The historic tragedy ofour nationalism discourse isthe systemic suppression of its cultural essence through pursuit of an education system in the colonial and post-colonial India which has brought for us perennial bondage both material and mental.Upanishad says- Sa Vidya Ya Vimuktaye (Knowledge is what liberates). Introduction of a liberating education system is, therefore, a necessity for reaffirming cultural foundation ofour nationhood, making Indian nationalism enlightening and humane in a true sense.

(Wruter is an Advocate in Delhi High Court)

यदि स्वयं में विश्वास करना और अधिक विस्तार से पढ़ाया और अभ्यास कराया गया होता, तो मुझे यकीन है कि बुराइयों और दुःख का एक बहुत बड़ा हिस्सा गायब हो गया होता।

(स्वामी विवेकानंद)

प्रेरणा पुंज

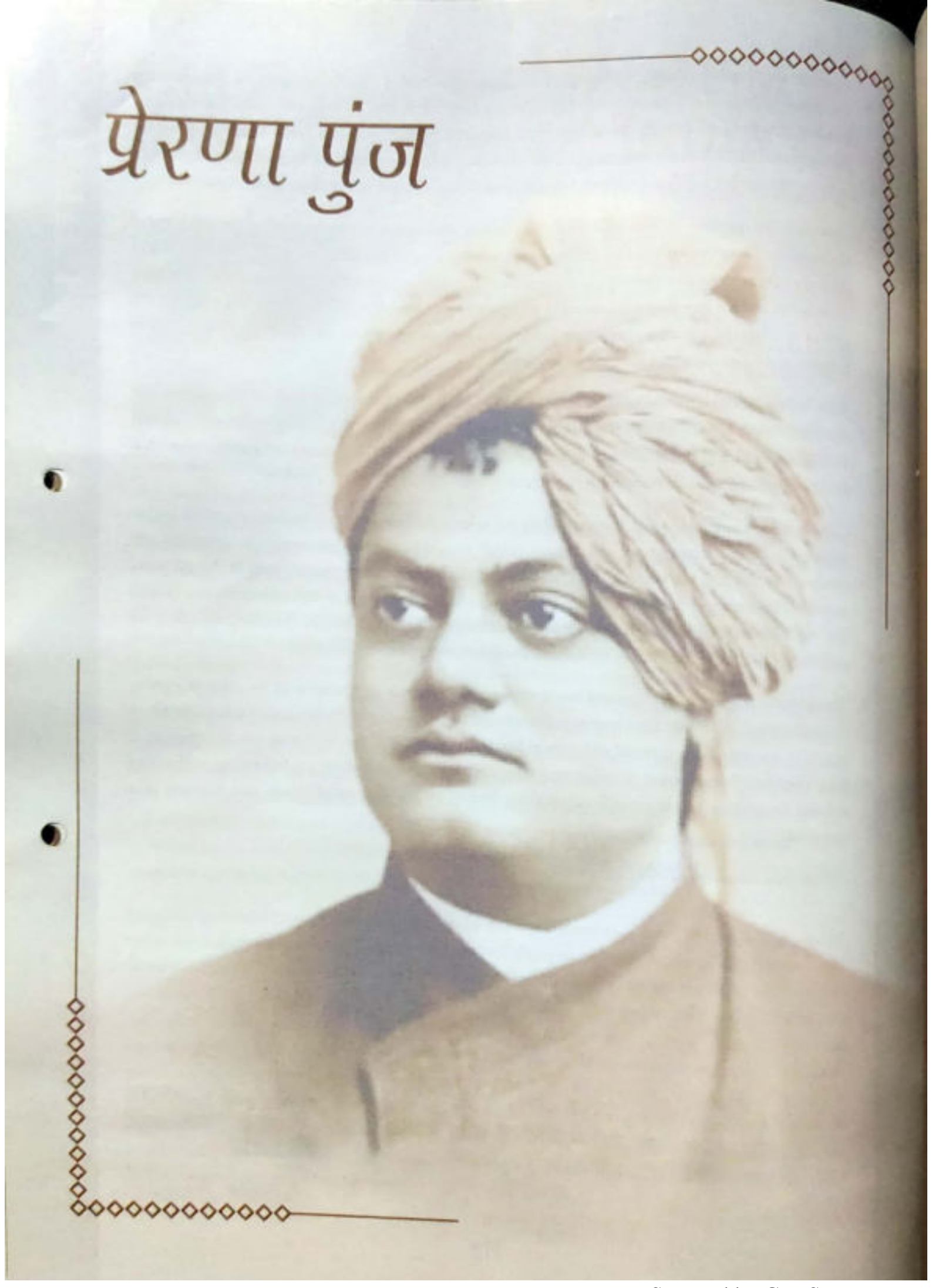

युवाओं के प्रेरणापुंज : स्वामी विवेकानंद

– डॉ. बजरंगलाल गुप्ता

लगभग एक सौ पचास वर्ष पूर्व 12 जनवरी 1863 को कोलकाता में एक विलक्षण बालक ने जन्म लिया। बचपन में उसे 'बिले', 'नरेन' और 'नरेन्द्रदत्त' नाम मिले और यही आगे चलकर स्वामी विवेकानंद के नाम से विश्वविख्यात हुआ। उस समय देश और दुनिया विचित्र तमस भरी परिस्थितियों से गुजर रहे थे। भारत और भारतीय समाज पराधीनता की पराभूत मानसिकता से ग्रस्त होकर हताश और निराश था, भारत की सांस्कृतिक–आध्यात्मिक परंपरा और प्राचीन ग्रंथों में उपलब्ध ज्ञान–राशि को वह दकियानूसी मानकर छोड़ने की राह पर चल पड़ा था, आत्मविश्वास खोता जा रहा था, इतना ही नहीं, सब प्रकार से दुःख–दैन्य के दंश को भोगने के लिए मजबूर हो चला था।

दूसरी ओर विश्व, विशेषकर अमेरिका व यूरोप के देश अपनी औपनिवेशिक साम्राज्यवादी मनोवृत्ति के कारण अन्याय–अत्याचार व शोषण के पर्याय बनते जा रहे थे, धर्मांधता के कारण जोर जबर्दस्ती, लोभ–प्रलोभन से मतांतरण को वे अपना अनिवार्य कर्तव्य व अधिकार दोनों मान बैठे थे, भौतिक समृद्धि से मदहोश तथा राज्य व सैनिक शक्ति के अहंकार से ग्रस्त हो चले थे, इन सबके बीच उन देशों के समाज–जीवन में चारों ओर बेचैनी, असंतोष, अशांति, व्यग्रता–उग्रता, सूनापन एवं अवसाद जैसे मनोरोग भी बढ़ रहे थे। इस प्रकार वह एक ऐसा समय था, जब चारों ओर अंधकार था, घनघोर अंधकार। किसी को कोई मार्ग नहीं सूझ रहा था, किधर जाना है और कैसे जाना है, कोई नहीं बता पा रहा था। ऐसे समय स्वामी विवेकानंद सचमुच एक प्रकाश–पुंज के रूप में प्रकट हुए दिखाई देते हैं।

वह एक ऐसा व्यक्तिमत्त्व था जिसने भारत और विश्व दोनों को एक साथ समानांतर रूप से प्रभावित किया, आलोकित किया। भारत में आत्मगौरव एवं आत्मविश्वास का भाव जगाया, विशेषकर भारत के युवकों को अपने स्वयं के पुरूषार्थ के बल पर भारत माता को दुःख दैन्य की अवस्था से बाहर निकालकर इसे फिर से विश्व में गौरवमयी स्थान पर आरूढ़ करने के लिए संकल्पबद्ध और संगठित होने के लिए प्रेरित किया, और इस सब काम के लिए भारतीय समाज को घोषवाक्य के रूप में यह मंत्र दिया –'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' (उठो, जागो और तब तक चलते रहो जब तक अपने लक्ष्य तक पहुंच न जाओ)। साथ ही शिकागो की सर्वधर्म सभा में पहुंचकर और बाद में अनेक देशों में भ्रमण कर अपने व्याख्यानों – प्रवचनों, चर्चा–परिचर्चाओं के माध्यम से समस्त विश्व को एक नए दर्शन व दृष्टि के आलोक से आलोकित भी किया।

11 सितम्बर 1893 को शिकागो की सर्वधर्म सभा के मंच पर अपने प्रथम भाषण के संबोधन में जब उन्होने, 'अमेरिकी बहनो व भाईयों' कहा तो समूचा सभागार तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। इस संबोधन के माध्यम से विवेकानंद ने उस भारतीय दृष्टि की ओर संकेत किया था जो विश्व–बाजार नहीं अपितु विश्व–परिवार की संकल्पना में विश्वास रखती है और इसलिए हम विश्व के सभी व्यक्तियों को अपना ही आत्मीय मानकर व्यवहार करते हैं। उन्होंने वेदांत दर्शन को भी विभिन्न संदर्भों में एवं विभिन्न प्रकारों से समझाकर यह भी बताया था, कि इसके आलोक में चलकर हम विश्व शांति, विश्व भाईचारा, एवं सर्वेभवंतु सुखिनः के लक्ष्य तक अधिक आसानी से पहुंच सकते है।

उन्होंने घोषणा की थी कि यह समय धार्मिक कट्टरता, धार्मिक उन्माद, मतांतरण, संघर्ष एवं शत्रुतापूर्ण भावनाओं को बढ़ाने का नहीं है, बल्कि आओ हम सब मिलकर पारस्परिक सहयोग एवं पारस्परिक समन्वय के एक नए युग का सूत्रपात करें और इसकी पुष्टि में उन्होंने शिकागो की उस सभा में निम्नलिखित श्लोक का पाठ किया था–

उन्होंने घोषणा की थी कि यह समय धार्मिक कट्टरता, धार्मिक उन्माद, मतांतरण, संघर्ष एवं शत्रुतापूर्ण भावनाओं को बढ़ाने का नहीं है, बल्कि आओ हम सब मिलकर पारस्परिक सहयोग एवं पारस्परिक समन्वय के एक नए युग का सूत्रपात करें और इसकी पुष्टि में उन्होंने शिकागो की उस सभा में निम्नलिखित श्लोक का पाठ किया था–

रूचिनां वैचिन्यात् ऋजुकुटिल नानापथजुशाम्
नृणामेको गज्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव।।

स्वामी विवेकानंद ने अमेरिका जाने से पूर्व पांच वर्षों तक और विदेश यात्रा से लौटकर आने के बाद चार वर्षों तक कुल नौ वर्षों तक विस्तार से भारत भ्रमण किया। इस भारत–भ्रमण के दौरान उन्होंने देश की स्थिति–परिस्थिति और दशा व दिशा का प्रत्यक्ष दर्शन एवं अनुभव प्राप्त किया। उन्हें लगा कि भारत का गौरवपूर्ण, सुखी–समृद्ध–स्वावलंबी जीवन और यहां की समृद्ध सामाजिक–सांस्कृतिक परंपरा, सबमें जबर्दस्त गिरावट आई हैं। यह देख वे बहुत व्यथित हो गए और तब मन ही मन निश्चय किया कि मैं इस चित्र को बदलकर भारत के पुनरोत्थान के लिए काम करूंगा। उनकी इच्छा थी कि जगती के आंगन में भारत फिर से एक स्वाभिमानी, शक्तिशाली, स्वावलंबी–समृद्धशाली, संस्कारित और संगठित राष्ट्र के रूप में अपना स्थान पा सके। राष्ट्रोत्थान के उद्देश्य की पूर्ति के लिए विवेकानंद की हमें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना होगा–

शक्ति–सबसे पहले हमें भारत के पुनरोदय के लिए आवश्यक शक्ति संचय एवं शक्ति संपादन करना होगा। इस दृष्टि से उनके विचारों में हमें पांच प्रकार की शक्ति का संचय करना होगा संकल्पशक्ति, शारीरिक बलशक्ति, चरित्रशक्ति, अर्थशक्ति और संगठनशक्ति। देश की दुर्दशा, समस्याओं एवं कठिनाइयों को देखकर हताश–निराश होने की बजाय इस चित्र को बदलने का संकल्प एवं दृढइच्छा शक्ति का परिचय देना होगा। वे मानते थे कि दृढ़संकल्प में से ही भावी प्रगति का मार्ग निकलता है। विवेकानंद बलहीन, कमजोर एवं पौरुष शून्य व्यक्ति एवं समाज को अच्छा नहीं मानते थे। अतः व्यक्ति और राष्ट्र दोनों को बल सम्पन्न बनाने पर जोर देते थे। युवकों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था कि, "हे मेरे युवक बंधुओं! तुम बलवान बनो, यही तुम्हारे लिए मेरा उपदेश है। बलवान शरीर से अथवा मजबूत पुट्ठों से तुम गीता को अधिक समझ सकोगे।" वे आगे कहते हैं कि, "मैं जो चाहता हूं, वह है लोहे की नसें और फौलाद के स्नायु, जिनके भीतर ऐसा मन निवास करता हो, जो कि वज्र के समान पदार्थ का बना हो। बल, पुरूषार्थ, क्षात्रवीर्य और ब्रह्मतेज। "एक जगह तो उन्होंने यहां तक घोषणा कर दी थी कि, "बल ही पुण्य है और दुर्बलता पाप। "वे तो यहां तक बोल उठे थे "अब झांझ मृंदग की बजाय रणभेरी, रणसिंगा व डमरू बजना चाहिए। हर–हर महादेव की गर्जना हो। शक्ति की पूजा चले। "इस प्रकार विवेकानंद की दृष्टि में देश के भीतर कानून व्यवस्था बनाए रखने एवं सीमा पर घुसपैठियों, आतंकवादियों एवं आक्रमणकारियों से सुरक्षा करने के लिए कमजोर नहीं, ताकतवर राज्यों और प्रबल सैन्य शक्ति की आवश्यकता होती है। स्वामीजी शारीरिक बल शक्ति के साथ चरित्रशक्ति एवं संस्कार शक्ति को भी देश के भाग्योदय के लिए आवश्यक मानते थे। अतः वे देश के प्रत्येक व्यक्ति को अवगुणों एवं कमजोरियों को दूर कर प्रेम, स्नेह, आत्मीयता, प्रामाणिकता, महिला के प्रति मातृवत् सम्मान दृष्टि आदि सदगुणों को अपने भीतर विकसित करने का आग्रह करते रहते थे। भारत अपने सच्चरित्र जीवन के कारण ही विश्व में सम्मान प्राप्त करता रहा है। इस संबंध में एक प्रसंग अत्यंत प्रेरणादायी है।

स्वामीजी शिकागो की सड़क पर सैर करने निकले थे। कुछ अमेरिकी युवक–युवतियां उनके पीछे–पीछे चलते हुए उनके भगवा चोले के लिबास पर भद्दी–भद्दी टिप्पणियां करने लगे। तब स्वामीजी रुके, पीछे मुड़कर देखा और तब उन्हें यह इतिहास प्रसिद्ध वाक्य कहा, **" Listen in your country a trailer can make a great but in my country where I have come it is the character and character only which makes a man great "**

स्वामीजी का यह वाक्य सुनकर वे सब लज्जित होकर स्वामीजी के चरणों में नतमस्तक हो गए। इसके साथ ही स्वामीजी अर्थ या धनशक्ति को भी देशोत्थान के लिए आवश्यक मानते थे। उनका पक्का मानना था कि हमें देश में व्याप्त भुखमरी, गरीबी, बेरोजगारी, बीमारी और विषमता को दूर करने के लिए शीघ्र प्रयास करना चाहिए। गरीबी के संबंध में उनके मन की संवेदना इन शब्दों में प्रकट हुई थी, "दरिद्र लोगों का ख्याल आते ही मेरा हृदय असीम वेदना से कराह उठता है। " वे तो यहां तक कहा करते थे कि गरीब और दुःखी ईश्वर के ही रूप है, इन्हीं की पूजा व सेवा करो और इसी क्रम में उन्होंने 'दरिद्र देवो भवः' और 'दरिद्रनारायण' की संकल्पनाएं प्रस्तुत की। उन्होंने कृषि एवं उद्योग दोनों क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने और अपने देश की वस्तुओं का विदेशी व्यापार करने के बारे में अनेक सुझाव दिए। श्री जमशेदजी टाटा को जापानी माचिस को भारत में बेचने की बजाय भारत में ही माचिस उद्योग लगाने और विज्ञान व टेक्नोलॉजी की दृष्टि से अनुसंधान केन्द्र बनाने का सुझाव दिया था। इस प्रकार वे भारत को फिर से एक समृद्धशाली–स्वावलंबी राष्ट्र के रूप में देखना चाहते थे। इन सबसे ऊपर स्वामीजी ने संगठन शक्ति पर बड़ा जोर दिया था। देश में संगठन के अभाव के संबंध में दुःख प्रकट करते हुए उन्होंने एक पत्र में लिखा था कि, "भारत में तीन मनुष्य एक साथ मिलकर पांच मिनट के लिए भी कोई काम नहीं कर सकते है। "वे कहा करते थे कि हमारे स्वभाव में संगठन का सर्वथा अभाव है, पर इसे हमें अपने स्वभाव में लाना है।" यदि हमें भारत को महान बनाना है और उसका भविष्य उज्ज्वल बनाना है तो इसके लिए आवश्यकता है संगठन की और बिखरी हुई इच्छा शक्ति को एकत्र लाने की। हमें ऋग्वेद की ऋचा "संगच्छध्वं संवदध्वम् संवोमनांसिजानताम्" की भावना से काम करना होगा। उनका दृढ़ विश्वास था कि, "कोई सेवाभावी संगठन ही संपूर्ण भारत को संगठित कर पाएगा।"

भक्ति–स्वामी विवेकानंदजी का यह मानना था कि राष्ट्रोत्थान के लिए शक्ति के साथ भक्ति भी अनिवार्य है। उनका जोर दो प्रकार की भक्ति पर था–ईश्वरभक्ति ओर भारतभक्ति। उनका विश्वास था कि ईश्वर के प्रति पूर्ण निष्ठा रखते हुए धर्म, संस्कृति और अध्यात्म का सहारा लेकर ही हम अपना काम पूर्ण कर सकते है। भारत का प्राण तत्त्व एवं आत्म तत्त्व है धर्म और संस्कृति। यदि भारत का उत्थान होना है तो इसे ही आधार बनाना होगा। इसे छोड़कर किया जाने वाला कोई भी काम न तो हमें स्वीकार्य है और न ही वह हमारे लिए फलदायी हो सकता है। वे आग्रहपूर्वक यह बात कहा करते थे कि हमें पाश्चात्य भौतिकतावाद के चक्कर में पड़कर अपने धर्म और अध्यात्म को भुला नहीं देना है। इस संबंध में उनका कथन है कि, "स्मरण रखो यदि तुम पाश्चात्य भौतिकवादी सभ्यता के चक्कर में पड़कर आध्यात्मिकता का आधार त्याग दोगे तो उसका परिणाम होगा कि तीन पीढ़ियों में तुम्हारा राष्ट्रीय अस्तित्व मिट जाएगा क्योंकि राष्ट्र का मेरूदण्ड टूट जाएगा। इसका परिणाम होगा सर्वतोमुखी सत्यानाश। "ईश्वरभक्ति के साथ–साथ स्वामीजी देशभक्ति, राष्ट्रभक्ति और भारतभक्ति को भी उतना ही आवश्यक मानते थे। इसीलिए तो उन्होंने यहां तक कहा था कि आगामी कुछ वर्षों के लिए हमें सब देवी–देवताओं को भूलकर एक ही देवी की आराधना करनी चाहिए और वह है भारत माता। हमारे किसी भी काम की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कसौटी यह होनी चाहिए कि उससे भारत का हित हो। मेरी संपूर्ण शक्ति, बुद्धि, योग्यता भारत की प्रगति में काम आए। वे भारत के लोगों में अपने देश के प्रति स्वाभिमान का भाव जगाने के लिए कहा करते थे, "भारत में जन्म लेने के कारण लज्जित मत होओ वरन् गौरव का अनुभव करो। दूसरे देशों से हमें कुछ लेना है अवश्य, पर दुनियां को देने के लिए हमारे पास इन देशों से सहस्र गुना अधिक है। भारत के साथ अपना तादात्म स्थापित करते हुए उन्होंने कहा था कि, "मैं घनीभूत भारत हूं।" भारत के प्रति इस प्रकार की भावना के कारण ही जब वे विदेश यात्रा से लौटकर भारत

के समुद्र तट पर उतरे तो दौड़कर साष्टांग भारत की मिट्टी में लोटपोट हो गए। उनके स्वागत में माला पहने हुए और जयजयकार करते हुए लोग यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गए। ऐसा करने का कारण पूछने पर स्वामीजी ने कहा कि इतने वर्षों तक विदेश में रहने के कारण मैं भारत मां के आंचल से दूर रहा, आज फिर से मां के आंचल में लिपटकर मैं धन्य हो गया, पवित्र हो गया। ऐसी थी उनकी भारतभक्ति। अपने एक संदेश में उन्होंने कहा था, "गर्व से कहो कि मैं भारतवासी हूं, प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। ब्राह्मण भारतवासी, अज्ञानी भारतवासी, दरिद्र–पीड़ित–वंचित भारतवासी सभी मेरे भाई हैं। भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, जवानी की फुलवारी और बुढ़ापे की काशी है। बोलो भाई बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है और भारत के कल्याण में ही मेरा कल्याण है।"

युक्ति– किसी भी देश के समुचित विकास के लिए नीति–रणनीति, तकनीक–टेक्नोलॉजी एवं प्रबंधन का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। विज्ञान के क्षेत्र में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है, हम उससे अछूते नहीं रह सकते। इसीलिए स्वामी विवेकानन्दजी कहा करते थे कि हमें अपने देश के लोगों विशेषकर नौजवानों को विज्ञान की शिक्षा देनी चाहिए। कृषि एवं उद्योग दोनों क्षेत्रों में उपयुक्त टेक्नोलॉजी अपनाकर इन क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाया जाना चाहिए। विज्ञान एवं टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में नए–नए अनुसंधान होने चाहिए। स्वामीजी का मानना था कि अब समय आ गया है जब हमें विज्ञान एवं धर्म, भौतिक समृद्धि एवं आध्यात्मिक उन्नति तथा पश्चिम एवं पूर्व के बीच समुचित समन्वय बनाना चाहिए। इतिहास साक्षी है कि सब प्रकार के संसाधन होने के बावजूद आधुनिक तकनीक–टेक्नोलॉजी एवं उचित प्रबंधन के अभाव में हम अपेक्षित प्रगति नहीं कर पाए। यहां यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि भारत में पारंपरिक तकनीक–टेक्नोलॉजी का प्रचुर भण्डार है। इसमें आवश्यक संशोधन कर युगानुकूल बनाना होगा और विश्व में विकसित तकनीक व टेक्नोलॉजी को देश की परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित कर अपनाना होगा। आज के विज्ञान, तकनीक व टेक्नोलॉजी का गलत उपयोग न हो और पर्यावरण तथा देश के सांस्कृतिक जीवन मूल्यों को नुकसान न पहुंचाए, इसके लिए इसे आध्यात्मिक धरातल के साथ जोड़कर रखना होगा।

गति– स्वामीजी का मानना था कि विकास की दौड़ में भारत पिछड़ गया है, अतः हमें अधिक गति से काम करना होगा। इसके लिए चरित्रवान–संस्कारवान मनुष्यों की एक सबल–सक्रिय कार्यशक्ति खड़ी करनी होगी। इसीलिए स्वामीजी कहा करते थे कि यदि मुझे संस्कारवान और पूर्ण मनोभाव से काम करने वाले कुछ सौ परिश्रमी नौजवान मिल जाएं तो मैं देश का चित्र बदल सकता हूं। इस संबंध में उनका यह कथन ध्यान देने योग्य है– "हमें चाहिए प्रज्ञावान, वीर और तेजस्वी युवक जो मृत्यु से आलिंगन करने का और समुद्र को लांघ जाने का साहस रखते हों। सिंह के पौरुष से युक्त, परमात्मा के प्रति अटूट निष्ठा से संपन्न और पावित्र्य की भावना से उद्दीप्त सहस्रों नर–नारी दरिद्रों व उपेक्षितों के प्रति हार्दिक सहानुभूति लेकर देश के एक कोने से दूसरे कोने तक भ्रमण करते हुए मुक्ति का, सामाजिक पुनरोत्थान का सहयोग और समता का संदेश देंगे।" स्वामीजी का यह भी आग्रह रहता था कि समाजोत्थान और समाजसेवा यह काम किसी भी प्रकार की बाधाओं व कठिनाइयों की परवाह न कर बिना रुके बिना झुके सतत् चलते रहना चाहिए। अपने इस भाव को वे इस प्रकार प्रकट किया करते थे–

"उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान्निबोधत" अर्थात् उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्ति तक रुको मत। आज समय आ गया है कि स्वामीजी के इस संदेश को हृदयंगम कर हम पूर्ण मनोयोग से राष्ट्रोत्थान के काम में लग जाएं।

(लेखक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उत्तर क्षेत्र संघचालक एवं राष्ट्रीय कार्यकारिणी सदस्य हैं)

सत्य को हजार तरीकों से बताया जा सकता है, फिर भी हर एक सत्य ही होगा।

(स्वामी विवेकानंद)

स्वच्छ विद्युत. हरित विद्युत.

पर्यावरण-अनुकूल विद्युत के लिए प्रतिबद्ध बेहतरीन तकनीक

अपनी स्थापना के समय से ही एनटीपीसी ने आधुनिक व पर्यावरण–अनुकूल तकनीक द्वारा एक भरोसेमंद ऊर्जा प्रदान करने का लक्ष्य रखा है। 45,548 मेगावाट के साथ भारत के विशालतम ऊर्जा उत्पादक के तौर पर एनटीपीसी ने अपने प्रत्येक परियोजना के आस–पास हरित क्षेत्रों के विकास के साथ वृहत वृक्षारोपण को अपनाया है। अपने राष्ट्रीय सोलर मिशन के तहत कंपनी ने स्वयं 10,000 मेगावाट व गैर–सरकारी क्षेत्र के उत्पादकों के साथ 15,000 मेगावाट सौर ऊर्जा का लक्ष्य रखा है।

अपने सेनपीप पहल के तहत आज, एनटीपीसी अपने ग्रीन हाउस उत्सर्जन को कम करने के लिए अत्यन्त ही समीक्षात्मक तकनीक का इस्तेमाल कर रहा है। एनटीपीसी इनर्जी टैक्नोलॉजी रिसर्च अलायंस (नेत्रा) व अन्य वैज्ञानिक सलाह परिषदों की सहायता से एनटीपीसी अपने स्टेशनों को विवेकपूर्ण उत्सर्जन प्रबंधन, प्रदूषण नियंत्रण तथा ड्राइ ऐश के बेहतर प्रयोग में सहयोग प्रदान कर स्वच्छ व हरित विद्युत द्वारा दीर्घकालिक विकास की ओर अग्रसर है।

110 मेगावाट सौर ऊर्जा परियोजनाएँ | 800 मेगावाट जल विद्युत परियोजनाएँ | प्रदूषण नियंत्रण प्रणालियाँ | पर्यावरण अनुकूल तकनीकों के विकास हेतु अनुसंधान | वृहत वानिकीकरण | ड्राई ऐश युटिलाइजेशन | उत्सर्जन प्रबंधन

एनटीपीसी
NTPC
एक महारत्न कम्पनी

एनटीपीसी लिमिटेड

(भारत सरकार का उद्यम)

(CIN: L40101DL1975GOI007966)
वेबसाइट: www.ntpc.co.in

विद्युत क्षेत्र में अग्रणी